पुष्टिमार्ग का संक्षिप्त परिचय

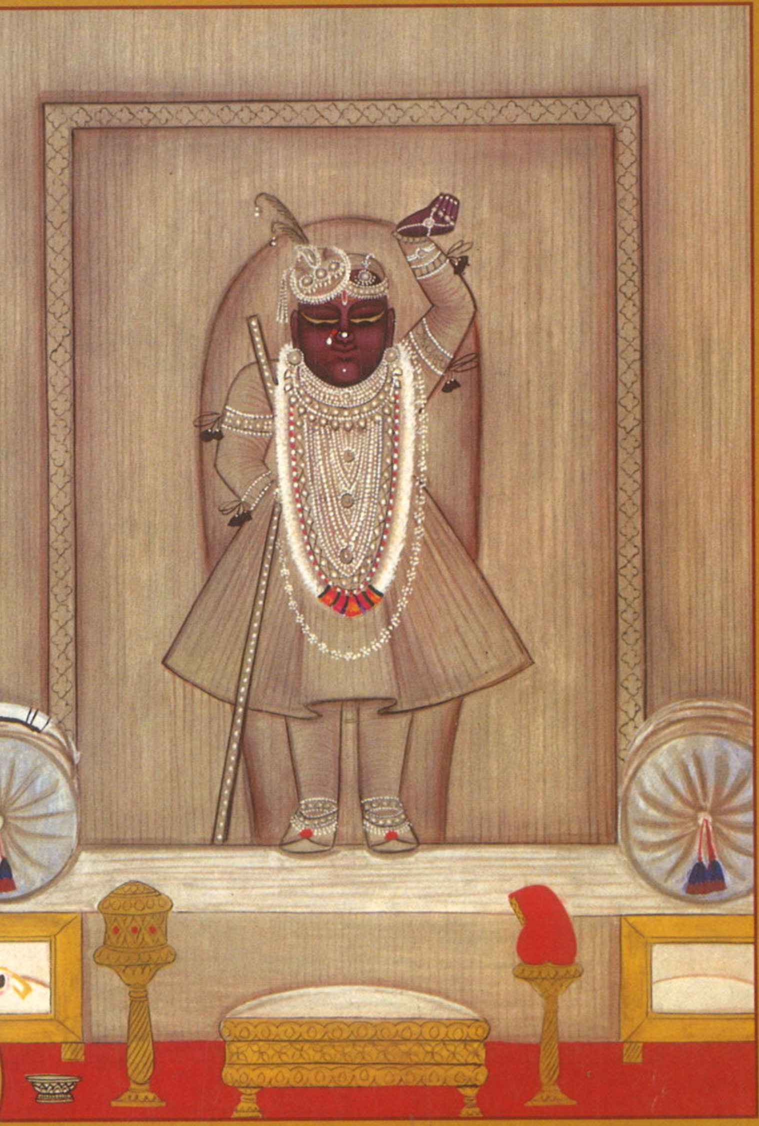

प्रा. रमेशभाई वि. परीख

।। श्री द्वारकेशो जयति ।।
।। श्री वाकपतये नमः ।।

पुष्टिमार्ग का संक्षिप्त परिचय

लेखक
प्रा. रमेशभाई वि. परीख

हिन्दी अनुवाद
श्री राधेश्याम आचार्य, ईन्दौर

प्रकाशक
श्री हरसानीजी पब्लिक चेरिटेबल ट्रस्ट
'वैष्णव परिवार सदन'
३२, शिव सोसायटी विभाग-२,
बी. के. सिनेमा के पास, महेसाणा-३८४००२
दूरभाष : ०२७६२-२४२३५३, २३०१६०
फेक्स : ९१-०२७६२-२४७६५५

Pushtimargno Sanskipta Parichay
by **Prof. Rameshbhai V. Parikh**
Hindi Translation by **Radheshyam Acharya (Indor)**

© श्री हरसानीजी पब्लिक चेरीटेबल ट्रस्ट

प्राप्तिस्थान:

- **श्री हरसानीजी पब्लिक चेरिटेबल ट्रस्ट**
  ३२, शिव सोसायटी विभाग-२,
  बी. के. सिनेमा के पास, महेसाणा-३८४००२
  दूरभाष : ०२७६२-२४२३५३, २३०१६०
  फेक्स : ९१-०२७६२-२४७६५५
- **श्री विजयभाई एम. देसाई**
  केमी ईक्विप, देवकरण मेन्शन, पहली मंजिल, ७९, प्रिन्सेस स्ट्रीट,
  मुंबई, दूरभाष : (०२२) २२०१००८४, फेक्स : ९१-२२-२२०६०८५८
- **श्री हरसानीजी पब्लिक चेरिटेबल ट्रस्ट**
  SB/13 ब्ल्युचीप कोम्पलेक्ष, स्टोक एक्सचेन्ज टावर के पास,
  सयाजीगंज, बडौदा

प्रथम आवृत्ति (हिन्दी अनुवाद) : २०११

पुस्तक प्रकाशन सहाय : ३०/-

मुद्रक:
पुष्टि प्रिन्ट्स
C1/६३, जी.आई.डी.सी., फेझ-२, देदियासण, महसाणा.
दूरभाष : (०२७६२) २२४२०४

अनुक्रमणिका

क्रम	विषय	पृष्ठ
	प्रस्तावना	५
	निवेदन	६
१.	श्रीवल्लभवंशज - परिचय	७
२.	निधि-स्वरुप	३९
३.	लीला स्वरुपों की भाव-भावना	५७
४.	पुष्टिमार्गीय साहित्य का परिचय	७०
५.	शुद्धाद्वैत ब्रह्मवाद	७९
६.	पुष्टिमार्ग के सिद्धान्त	८५
७.	प्रकीर्ण - विषय	१०७
८.	आदर्श वैष्णवी जीवन	११७

॥ श्रीवल्लभः ॥

श्री हरसानीजी पब्लिक चेरिटेबल ट्रस्ट, महेसाणा

(ट्रस्ट रिज. नं.इ/२९७० (महेसाणा) ता.३१-१-१९८७)
(ईन्कमटेक्ष मुक्ति नं. CIT/GNR/80G(5) MHN-85 2007-2008)
visit us at www.vaishnavparivar.org

ट्रस्टकी विभिन्न गतिविधि

१. 'वैष्णव परिवार' (गुजराती) मासिक का प्रकाशन
२. 'बालपुष्टि' (गुजराती+अंग्रेजी) बाल-मासिक का प्रकाशन
३. पुष्टिमार्गीय पुस्तको का गुजराती-हिन्दी-अंग्रेजी में प्रकाशन
४. ओडियो-विडीयो सी.डी. एवं डीवीडी का प्रकाशन
५. श्रीबैठकजी नवनिर्माण सेवा
६. गौसेवा
७. कमजोर आर्थिक परिस्थितीवाले वैष्णव परिवारोको चिकित्सा, रखरखाव और शैक्षिक हेतु सहायता
८. सारस्वतो का सन्मान
९. पुष्टिमार्ग के लिये विशिष्ट सेवा प्रदान करनेवाले महानुभावो का 'श्रीहरसानीजी एवोर्ड' से सन्मान (प्रतिवर्ष)
१०. 'व्रजभूमि रेनबसेरा' - अहमदाबादमें मुकाम के लिये प्रबंध
११. सत्संग सत्रो का आयोजन
१२. बालको के लिए विभिन्न प्रतियोगिता का आयोजन
१३. बालको के लिए सचित्र किताबो का प्रकाशन
१४. प्राकृतिक आपदा के दौरान आपदग्रस्तो को सहाय

ट्रस्टकी विभिन्न गतिविधिओ में सहायता करने और गतिविधिओ का लाभ लेने के लिए संपर्क करे -

(१) श्री हरसानीजी पब्लिक चेरिटेबल ट्रस्ट, 'वैष्णव परिवार सदन', ३२, शिव सोसायटी वि.२, बी. के. सिनेमा के पास, महेसाणा - ३८४ ००२ (गुजरात),
दूरभाष : (०२७६२) २४२३५३, २३०१६० इमेल : shpct@hotmail.com
(२) श्री विजयभाई एम. देसाई, केमी इक्विप, देवकरण मेन्शन, प्रथम मंजिल, ७९, प्रिन्सेस स्ट्रीट, मुंबई - ४०० ००२ (महाराष्ट्र)
दूरभाष : (०२२) २२०१००८४, २२०६०८५८

प्रस्तावना

देश-विदेश में वैष्णवों का ऐसा भाव तथा मांग रही है कि अपने पुष्टिमार्ग के सम्बन्ध में बच्चे तथा युवक कुछ जानते नहीं, यही नहीं प्रौढ़ वैष्णव भी सही और विस्तार से जानते नहीं है। पुष्टिमार्ग का सही ज्ञान न होने से, अपन इस मार्ग की सर्वोत्तमता समज नहीं सकते, इससे उस पर आचरण भी नहीं कर सकते। परिणाम स्वरुप अपने में धार्मिकता होते हुए भी धर्म निष्ठा सुदृढ न हो सकी।

श्री महाप्रभुजी की आज्ञा है कि सारे शास्त्रों को अच्छी तरह जानकर व समझकर श्रीकृष्ण की सेवा स्मरण करें। दूसरी ओर उपनिषद की आज्ञा है कि, शास्त्रों का ज्ञान भक्ति के बिना भाररुप है। ये दोनों विरोधी लगते वचनों का समन्वय इस तरह हो सकता है कि भक्ति के लिए ज्ञान तो जरूरी है लेकिन वह ज्ञान, बुद्धि द्वारा हृदय में आता है तब भाररुप होता है। वह ज्ञान, हृदय द्वारा बुद्धिगामी बनता है तो भक्ति की वृद्धि में पोषक होता है।

इस उद्देश्य के कारण ऐसी सरल पुस्तक की आवश्यकता रही है कि, जो पढ़ने वाले आबाल-वृद्ध वैष्णवों को पुष्टिमार्ग का ज्ञान हृदय द्वारा बुद्धि तक पहुँचावे, पुष्टिमार्ग का संक्षेप में मूलभूत ज्ञान दे सके, ऐसी पुस्तक बहुत कम होने से, ऐसे सर्वग्राही पुस्तक की आवश्यकता थी।

मेरे लेखन के प्रारंभिक समय में पू. गो. १०८ श्रीवृजरत्न लालजी महाराज श्री (सूरत) की मुझे इस पुस्तक को लिखने की आज्ञा हुई। उनकी कृपा से यह लिखी गई। आपश्री ने साद्यंत इसका श्रवण कर, प्रसन्नता पूर्वक आशीर्वाद प्रदान किया। आपश्री की आज्ञासे चीखली के वैष्णव श्री बाबुलालभाई परीखने इस पुस्तक की प्रथम आवृत्तिका प्रकाशन किया था।

द्वितीय आवृत्तिः
ज्येष्ठ शुक्ल पंचमी २०१२ (१९९६)
महेसाणा

दासानुदास
रमेशभाई परीख का
सदैन्य जयश्रीकृष्ण

निवेदन

'पुष्टिमार्ग का संक्षिप्त परिचय' ग्रन्थ छोटा सा है। यह जितना संप्रदाय में प्रवेश करने वालों को जानकारी उपलब्ध कराता है, उतना ही संप्रदाय के युवा-वृद्ध को भी संप्रदाय क्या है, यह बताने का प्रयास करता है।

इस तरह की हिन्दी भाषा में पुष्टिमार्ग की कोई पुस्तक नहीं थी जो यह बतावें की संप्रदाय क्या है? इस संप्रदाय में ऐसी क्या बात है कि इसमें प्रवेश ले। इसमें ऐसी सामग्री है जिसे पढ़कर अपनी जिज्ञासा शान्त कर सकते हैं। इसमें संप्रदाय के हर पहलु को छुने का प्रयास किया गया है।

इस पुस्तक में, पुष्टिमार्ग क्या है? मंत्र दीक्षा क्या है? सेवा ओर पूजा में क्या अन्तर है? जयश्रीकृष्ण क्यों और केसे करें? आदर्श वैष्णवी जीवन क्या है? पुष्टिमार्गीय साहित्य कौनसा है? प्रधान पीठ तथा श्रीनाथजी की जानकारी, अन्य सातों पीठो व सात स्वरूपों की जानकारी आदि रोचक ढंग से प्रस्तुत की गई है।

प्रो. श्री रमेशभाई परीख वल्लभ संप्रदाय के मुर्धन्य विद्वान तथा श्रीवल्लभ कुल के कृपापात्र भगवदीय थे। इन्होंने 'गागर में सागर' भर दिया है। यह हस्तप्रत अत्यंत सरल भाषा में लिखी गई है। यह इतनी लोकप्रिय है कि इसकी तीन आवृत्तियाँ गुजराती भाषा में निकल चुकी हैं। मैने भी इसे सरल भाषा में लिखने का प्रयास किया है। प्रत्येक वैष्णव को यह पुस्तक अपने घरमें रखना चाहिए जिससे आबाल-वृद्ध इसका लाभ उठा सके। साथ ही वल्लभ संप्रदाय की परीक्षा देने वालो के लिए भी यह उपादेय हैं।

दिनांक :

दासानुदास
राधेश्याम आचार्य
विद्यावाचस्पति, एम. ए. एलएल. बी
साहित्य रत्न, सी. टी. (डेक-डम.)

पुष्टिमार्ग का संक्षिप्त परिचय

१. श्री वल्लभाचार्यजी का वंश

१. श्री वल्लभाचार्यजी - श्री महाप्रभुजी :

पुष्टिमार्ग के स्थापक श्री वल्लभाचार्यजी 'श्री महाप्रभुजी' के नामसे जाने जाते हैं। उनका प्राकट्य श्री विक्रम की सोलहवी सदी में हुआ था। उन्होंने हिन्दुधर्म तथा संस्कृति का जैसा रक्षण किया है वैसा भाग्य से दूसरे किसी आचार्य अथवा साधु-पुरुषने किया हो।

उनके पूर्वजो की जन्मभूमि दक्षिण भारत के आन्ध्रप्रदेश के कांकरवाड नामक ग्राम में थी। वे तेलंग ब्राह्मण थे। उनके कुटुम्ब के मूल पुरुष श्री यज्ञनारायण भट्ट थे। श्री यज्ञनारायण भट्ट बडे विद्वान थे, उन्होने ३२ सोमयज्ञ किये थे। ऐसा कहाजाता है कि सोमयज्ञ की पूर्णाहुति के समय साक्षात भगवान ने प्रगट होकर उन्हे वरदान दिया था कि, 'तुम्हारे वंश में १०० सोमयज्ञ पूर्ण होने पर, मैं जन्म लुंगा।' उनके पुत्र गंगाधर भट्ट ने २८ सोमयज्ञ किए। गंगाधर भट्ट के पुत्र गणपति भट्ट ने ३० सोमयज्ञ किये, उनके पुत्र वल्लभ भट्ट ने ५ सोमयज्ञ किये थे। इसके बाद उनके पुत्र लक्ष्मण भट्ट ने ५ सोमयज्ञ कर १०० सोमयज्ञ पूर्ण किये थे।

श्री लक्ष्मण भट्ट का विवाह विद्यानगर के राज पंडित की बहीन ईल्लमागारु के साथ हुआ था। एक बार वे काशी से दक्षिण की ओर जा रहे थे, तब मार्ग में, मध्यप्रदेश में रायपुर के पास चम्पारण्य के जंगल में (वर्तमान छत्तीसगढ) वि.सं. १५३५ की चैत्र वदि दशमी की रात्री में श्रीमती ईल्लमागारुजी को अधूरे प्रसव में पुत्र जन्म हुआ, पुत्र को मृतक समझकर, शमीवृक्षकी खगोल में रख कर आगे चलने लगे। स्वप्न में भगवान ने दर्शन

देकर कहाँ- 'तुम्हारे यहाँ मैं पुत्र रुप में जन्मा हूँ। तुम वापस आओ' वे वापस उस स्थान पर आये, तब अग्नि के घेरे के भीतर एक अद्‌भुत बालक के दर्शन हुए। यह बालक वही वल्लभाचार्यजी थे। उनका प्राकट्य वि. सं. १५३५ चैत्र वदी एकादशी रविवार को हुआ था।

श्री वल्लभ का बाल्यकाल काशी में बीता था, छोटी उम्र में ही पिता द्वारा उन्हें विद्या, ज्ञान और धार्मिक संस्कार प्राप्त हुए थे। उनके पिता के पास शास्त्र सम्बधी चर्चा के लिए विद्वान आते थे। वे श्री वल्लभ की कुशाग्र बुद्धि को देखकर 'वाक्‌पति' और 'बालसरस्वती' कहकर उनकी प्रशंसा करते थे। उन्हे खिलौनो से खेलने के बदले पुस्तको से खेलना विशेष अच्छा लगता था।

सात वर्ष की उम्र में उनका यज्ञोपवीत संस्कार हुआ, उसके बाद उन्हें विद्याध्ययन के लिए विद्वान गुरुओ के पास भेजा। ऐसा कहा जाता है कि थोड़े महिनों में ही उन्होने लगन से शास्त्रो का अध्ययन किया। विद्याभ्यास करते समय ही उन्होने अद्वेत वाद के स्थान पर अपना स्वतंत्र मत स्थापित किया।

वि.सं.१५४४ में उनके पिताजी का गोलोकवास हो गया। उसके बाद उनकी माता से आज्ञा लेकर भारत की परिक्रमा करना प्रारंभ किया। दस वर्ष की छोटी उम्र मे ही धोती-उपरना पहनकर खुले पैरो से भारत-भ्रमण पैदल प्रारंभ किया।

उन्होने भारत की परिक्रमा तीन बार की। इन तीन परिक्रमाओं में उनके जीवन कें अढारह बर्ष पूर्ण हुए। इन परिक्रमाओं में उन्होंने मुख्य रुप से निम्न बिन्दूओं पर अपना ध्यान केन्द्रित किया था -

१. मायावाद के सामने शुद्धाद्वैत ब्रह्मवाद की स्थापना करके, उसके लिए विद्वानों के साथ शास्त्र चर्चा करना।
२. दैवी जीवों का उद्धार कर, ईश्वर प्राप्ति का सरल और निश्चित मार्ग बताना।

३. श्रीमद्‌भागवत के अर्थ को स्पष्ट करने के लिए टीका करना।
४. अपने सिद्धान्तों को समझाने के लिए ग्रन्थों की रचना करना।
५. विभिन्न स्थानों पर भागवत् परायण करना।

एक बार वे जगन्नाथ पुरी गये थे, वहाँ एक वैष्णव ने उनके हाथ में श्री जगदीश के भात का प्रसाद रखा। उस दिन एकादशी थी, वे एकादशी का निराहार व्रत करते, लेकिन प्रसाद का अनादर न हो इस लिए मंदिर के आगे पूरा दिन तथा रात, हाथ में प्रसाद रखकर, प्रसाद का सन्मान करते हुए भगवद् कथा और कीर्तन किया। और दूसरे दिन प्रा:तकाल प्रसाद ग्रहण किया।

उस समय वहाँ राजा गजपति पुरुषोत्तम का राज्य था। उसके राज्य में पंडितों में धर्म सम्बन्धी मतभेद खड़ा हुआ। राजा ने एक बड़ी धर्म सभा बुलाई जिसमें श्रीवल्लभ भी पधारे।

श्रीवल्लभ ने जगदीश भगवान के द्वारा उत्तर दिलवाया, वह उत्तर नीचे अनुसार हैं-

हिन्दू धर्मका मुख्य ग्रन्थ गीताजी है।
हिन्दू धर्मके मुख्य देव श्रीकृष्ण है।
मुख्य मंत्र श्रीकृष्ण का नाम है।
मुख्य कर्म श्रीकृष्ण की सेवा है।

सबने श्री वल्लभ का जयजयकार किया।

श्री वल्लभ दक्षिण भारत के हिन्दू महाराज्य विजयनगर (विद्यानगर) पधारे थे। वहाँ के राजा रायकृष्णदेव ने भी एक धर्मसभा का आयोजन किया था। उसमें श्री वल्लभ ने विभिन्न धर्मो के आचार्यो तथा विद्वानों के साथ अट्ठाईस दिन तक शास्त्र चर्चा की, विविध शास्त्र प्रमाणों से यह सिद्ध किया कि, ईश्वर(ब्रह्म) सत्य है। जगत ईश्वर का आधिभौतिक स्वरुप है। ईश्वर

ने जगत की रचना की है। इससे जगत भी सत्य है। जीव ईश्वर का अंश है। 'ऐसे, अपना शुद्धाद्वेत-ब्रह्मवाद का-सिद्धान्त को प्रतिस्थापित किया। सारे आचार्यो ने सर्वानुमति से श्री वल्लभ को आचार्य की पदवी से विभूषित किया। श्रीकृष्णदेवरायने श्री वल्लभका कनकाअभिषेक कर, अभूतपर्व सन्मान किया।'

इस तरह अनेक स्थानों पर श्री वल्लभने विद्वानों की सभाओंमें अपने मतकी स्थापना की थी।

श्री काशीविश्वेश्वर महादेवजी के मन्दिर की दीवार पर अपने 'पत्रावलंबन' ग्रन्थ को चिपका कर, उसके द्वारा काशी के विद्वानों को उन्होंने निरुत्तर कर दिया था।

मथुरामें, बादशाह सिकंदर लोदी ने विश्राम घाट पर हिन्दू लोग यमुना स्नान करने के लिए न जा सके ऐसी युक्ति की थी, उसके सामने आपने आगे बढ़कर हिन्दूओं के साथ विश्राम घाट पर जा कर यमुना में स्नान किया था। और बादशाह को अपनी पाखंडी युक्ति वापस लेने के लिए मजबुर किया था।

श्री गोकुल में, वि.सं.१५४९ की श्रावण शुक्ल एकादशी की मध्यरात्री में साक्षात् भगवान ने प्रकट हो कर आज्ञा की थी कि, 'आप ब्रह्म संबंध जिस जिव को दोगे उसका मैं उद्धार करुंगा।' उस समय श्रीवल्लभ ने मधुराष्टक द्वारा प्रभु की स्तुति की थी। दूसरे दिन स्वयं के कृपापात्र सेवक श्री दामोदर दास हरसानी आदि को ब्रह्म संबंध मंत्र दिया। उसके भाव को समझाने के लिए 'सिद्धान्त रहस्य' ग्रन्थ की रचना कर के उन्हें समझाया।

ब्रज में श्री गिरीराजजी पर श्री गोवर्धननाथीजी प्रकट हुए, उनकी आज्ञा से वे वहाँ पधारे तथा छोटा मन्दिर सिद्धकर, सेवा प्रकार प्रारंभ किया। पंढरपुर में विठ्ठलनाथजी की आज्ञा होने से, ब्रह्मचर्य आश्रम का हठ छोड़कर काशी

में अपनी जाती के श्री देवन भट्ट नामक ब्राह्मण की सुकन्या श्री महालक्ष्मीजी के साथ विवाह किया तथा गृहस्थाश्रम में प्रवेश किया।

तीनों भारत परिक्रमा के बाद त्रिवेणी संगम प्रयाग के पास अडेल नामक एकान्त स्थान में पर्णकुटी बनाकर स्थायी निवास किया था। आपके यहाँ दो पुत्ररत्न का प्राकट्य हुआ- बडे पुत्र श्री गोपीनाथजी तथा छोटे पुत्र श्री विठ्ठलनाथजी थे।

आपकी शरण में अनेक जीव आये थे। उनमें से चार भक्त कवियों, श्री परमानंददासजी, श्री सुरदासजी, श्री कुंभनदासजी और श्री कृष्णदासजी को श्रीनाथजी की कीर्तन सेवा सोंपी थी। आपके सेवकों में बहुत से राजा भी थे।

शुद्र तथा अतिशुद्र के रुप में हिन्दू समाज ने जिन जातियों का तिरस्कार किया था उन्हें श्री महाप्रभुजी ने अपनी शरण में लेकर, उनका उद्धार किया था। उसी तरह यवन जाती में से भी शरण में आये यवनों को श्री महाप्रभुजी ने अपने सेवक बनाये। आपश्री के ८४ वैष्णवो के चरित्र प्रसिद्ध हैं।

जहाँ जहाँ समाज में गलत आचार-विचारों की ओर उनका ध्यान गया उसे दूर करने का प्रयास किया। जैसे मृतक भोजन, यज्ञ में हिंसा, मांस, मदिरा, अफीम, इत्यादि व्यसन, स्त्रीओं पर अत्याचार, सती प्रथा, दूसरी जाती में कन्या न देना - ऐसी अनेक बातों को दूर किया। जबकि उनका मुख्य ध्येय श्रीकृष्ण की सेवा स्मरण था न कि समाज सुधार, उनका ध्येय था। आप हमेशा आज्ञा करते - 'कृष्ण की भक्ति यहीं सनातन धर्म है, दूसरा धर्म किसी समय या स्थान पर नहीं था।' अन्याश्रय छोड़कर एकेश्वरवाद, असमर्पित छोडे तथा देह तथा मन की शुद्धि पर जोर दिया। असदालाप छुड़ाकर सत्य बोलने की निष्ठा, दु:संग छोडकर आत्मशुद्धि का मार्ग आपने बताया। जब तक हृदय में सच्चा वैराग्य आता नहीं है, वहाँ तक गृहस्थाश्रम का पालन करते हुए सेवा और स्मरण करने की आज्ञा की।

आपश्रीने अनेक ग्रन्थों की रचना की हैं उनमें मुख्य निम्नानुसार है -

श्री वेदव्यासजी रचित ब्रह्मसूत्र पर भाष्य-'अणुभाष्य' - 'सुबोधिनी'-श्रीमदभागवत पर टीका, 'पूर्व मिमांसा कारिका', गायत्री मंत्र पर भाष्य के रुपमें 'गायत्री भाष्य', तत्वार्थ दीप निबंध, श्रुतिगीता, पुरुषोत्तम सहस्त्रनाम, 'त्रिविध नामावली', 'दशमस्कंध की अनुक्रमणिक्का', षोडश ग्रन्थ, पत्रावलंबन, मधुराष्टक, 'परिवृढ़ाष्टक' 'शिक्षाश्लोकी, इत्यादि आपके रचे हुए ग्रन्थ हैं।

५२ वर्ष की उम्र में, वि.सं.१५८७ के आषाढ शुक्ल द्वितीया के दिन काशी में हनुमान घाट पर, मध्यान्ह के समय आप श्री ने गंगा की मध्य धारा में प्रवेश किया। तेज पूञ्ज के द्वारा सदेह अपने नित्य धाम की ओर गमन किया। ये अलौकिक दर्शन अनेक लोगों को हुए थे।

नित्य धाम में पधारने से पूर्व आपने अपने कुटुम्ब तथा वैष्णवों को अंतिम शिक्षा देते हुए आज्ञा की थी कि, 'अहंता-ममतारुपी संसार में फँस जाओगें तो बहिर्मुख हो जाओगें'। प्रभु से बहिर्मुख होने से तुम कालरुपी प्रवाह में खिंच जाओंगे। इसलिए भगवान श्रीकृष्ण की भक्ति करो। भगवान लौकिक नहीं और वे लौकिक सेवा स्वीकारते भी नहीं है।

इस तरह पृथ्वी पर ५२ वर्ष बिराजकर श्रीवल्लभ ने हिन्दू धर्म और हिन्दू समाज की बडी क्रान्ति की थी, ऐसे समय में जब हिन्दू समाज वैदिक धर्मका शास्त्र अनुसार पालन करने में असमर्थ था तब श्रीवल्लभने पुष्टिमार्ग द्वारा एक नया मार्ग बताया- प्रभु की कृपा का मार्ग अर्थात् पुष्टिमार्ग। जीव प्रभु का अंश है, इससे वह प्रभु का दास बनकर, प्रभु को सर्व समर्पण करें, तथा प्रभुका होकर रहे तो प्रभु उस जीव पर कृपा करके, वे उसका अवश्य उद्धार करेगें। श्री वल्लभाचार्यजी द्वारा प्रकटित पुष्टिमार्ग, ५०० वर्षो से जीवन जिने का एक नया मार्ग सिखा रहा है।

२. श्री गोपीनाथजी

श्री महाप्रभुजी के प्रथम पुत्र श्री गोपीनाथजी.

उनका प्राकट्य वि.सं. १५६७ के भाद्रपद मासके कृष्ण पक्ष की द्वादशी को हुआ था।

संवत् पन्द्रहा सडसढ आसो वदि द्वादसी शुभ गायो,
गायो श्री गोपीनाथजी जब जन्म लियो आयके,
जानि बलको रुप हरखत देत दान बढ़ायके।
('मूल पुरुष' - गोस्वामी द्वारकेशजी महाराज)

श्री गोपीनाथजी के प्राकट्य के आनंद में बहुत से भक्तकवियों ने बधाई गाई थी -

घर घर आनंद होत बधाई ।
श्री वल्लभ ग्रह प्रगट भये हैं, श्री गोपीनाथ कुँवर सुखदाई ।। (१)
धन्य धन्य भादो वदी दिन द्वादसी धन धन वार नक्षत्र कहाई ।
धन्य भाग्य खुले भक्तन के, धन धन कुख अक्काजु माई ।। (२)
मंगल कलश विराजत द्वारे, बंदनवार बधाई ।
कुंकुम अक्षत थार हाथ ले, गावत वधुअन आई ।। (३)
जुग जुग राज करो यह ढ़ोटा, देत आशिश सबै मन भाई ।
जय जय कार भयो त्रिभुवन में, देव दुंदुभीनाद बजाई ।। (४)
श्री वल्लभ सुत चरण कमल रज, कृष्णदास न्यौछावर पाई । (५)

उस समय सबके आनंद का पार नहीं था। श्री महाप्रभुजीने ब्राह्मणों, गरीबो, और याचको को बहुत दान दक्षिणा दी। और हजारो विद्वानों, वैष्णवों और भक्तो का अतिथि सत्कार किया।

श्रीगोपीनाथजी की उम्र सात वर्ष की हुई, तब उनका यज्ञोपवीत संस्कार किया गया। उनके विद्याभ्यास का प्रारंभ श्रीमहाप्रभुजीने स्वयं ही कराया।

श्रीगोपीनाथजी को वेदशास्त्र की मर्यादा के अनुसार जीवन जिने का बहुत आनंद आता था। ब्राह्म मुहुर्त में उठकर सौचादि से निवृत्त होकर वे भगवद् सेवा स्मरण में लग जातें। ऐसे नियमित जीवन से महाप्रभुजी बडे प्रसन्न थे।

एक दिन जल्दी प्रा:तकाल श्री गोपीनाथजी स्नान करके सेवा के लिए तैयार थे, श्री महाप्रभुजी ने स्नान किया नहीं था, इसलिए गोपीनाथजी को भगवान को जगाने की आज्ञा की। श्री गोपीनाथजी श्री ठाकुरजी के मन्दिर के पास गये। धीरे से द्वार खोला तो लगा कि प्रभु निंद्रावश हैं। क्या करना यह निश्चित न कर सके। फिर श्री महाप्रभुजी के पास आये और वस्तु स्थिति बताई, श्री महाप्रभुजी ने आज्ञा की, 'तीन ताली बजाकर प्रभु को जगाओ।' श्री गोपीनाथजी ने मन्दिर के पास जाकर तीन ताली बजाकर विनंती की, 'हे प्रभु-सूर्य देव उदित होने वाले हैं आप कृपा करके श्री स्वामिनीजी के साथ जागो, हमारी सेवा को अंगीकार करके, और मुझे अपना समझकर स्वीकार करें।' प्रभु तत्काल जागे, श्री गोपीनाथजी का हृदय आनंद से भर गया, उन्हें लगा कि ब्राह्म मुहुर्त में प्रभु को जगाने की शास्त्र मर्यादा का पालन हुआ तथा प्रभु को परिश्रम नहीं हुआ।

एक दिन श्री महाप्रभुजी अडेल में यमुना तट पर संध्या वंदन कर रहे थे। पास में श्री गोपीनाथजी बिराज रहे थे। वहाँ कंभोज के वैष्णवों ने आकर विनंती की, 'कृपानाथ कंभोज के शेठ दामोदरदास संभरवाला के सेव्य श्री द्वारकाधीश प्रभु संपति सहित पधारे है।'

यह सुनकर श्री गोपीनाथजी ने बडी प्रसन्नता से कहाँ, 'वाह श्री द्वारकाधीशजी लक्ष्मीजी के साथ पधारे हैं। बहुत अच्छा!!'

श्री महाप्रभुजी ने आज्ञा की, 'बावा ऐसे प्रभु पधारे, उससे अधिक लक्ष्मीजी के साथ पधारे उसका आनंद आपको विशेष हुआ, ठीक है न? मेरा वंशज के मेरा वैष्णव भगवद् द्रव्य में आसक्ति रखेगा तो किसी दिन अलौकिक सुख प्राप्त नहीं कर सकता। आपका मन श्री द्वारकाधीश प्रभु की संपत्ति से मोहित तो हुआ नहीं न?'

श्री गोपीनाथजी ने विनंती की, 'दादाजी आपका होकर जो प्रभुकी सम्पत्ति में मन को लगाएगा वह निर्वंश होगा।'

श्री गोपीनाथजी की ऐसी समझ व भाव स्थिति को देखकर श्री महाप्रभुजी बड़े प्रसन्न हुए।

एक बार श्री गोपीनाथजी के मन में विचार आया, मैं एक सामान्य बालक नहीं हूं। मेरे पिता श्रीवल्लभ सामान्य पिता नहीं हैं। मैं एक अलौकिक अग्निस्वरुप का अलौकिक पुत्र हूं। मुझे मेरा जीवन सामान्य बालक की तरह व्यर्थ न गंवा देना चाहिए। पितृचरण के योग्य उत्तराधिकारी के लिए मुझे उसके योग्य बनना चहिए। पितृचरण का विशेष प्रेम श्रीमद्भागवतजी पर है, इसलिए मुझे भी श्रीमद्भागवत का अभ्यास और पारायण नित्य नियम पूर्वक करना चाहिए। उस समय आपकी उम्र चौदह वर्ष की थी। उस समय श्रीमहाप्रभुजी अडेल में विराजते न थे। निश्चय के पक्के श्री गोपीनाथजी ने दूसरे दिन प्रा:तकाल से श्रीमद्भागवत का पारायण प्रारंभ किया। उन्होंने ऐसा नियम लिया कि, 'श्रीमद्भागवत के संपूर्ण पारायण के बाद ही भोजन करुंगा।' ऐसा करने सें दो चार दिन व्यतीत हो जाते, उनकी माताजी श्री महालक्ष्मीजी उन्हें बहुत समझाते, लेकिन वे अपने निश्चय पर अटल थे। श्री महाप्रभुजी जब वापस अडेल पधारे तब श्री महालक्ष्मीजी ने उन्हें यह बात बताई। श्रीगोपीनाथजी के द्रढ संकल्प तथा मनोबल को देखकर श्री महाप्रभुजी बड़े प्रसन्न हुए। आपने श्री गोपीनाथजी को बुलाकर आज्ञा की, आपका नियम निभजाय और आपके मातृचरण को प्रसन्नता हो इसके लिए एक मार्ग तुम्हें बताता हूँ। श्रीमद्भागवत के साररुप प्रभु के एक हजार से अधिक नाम का यह स्तोत्र मैंने रचा है जिसका नाम है, 'श्री पुरुषोत्तम सहस्त्रनाम' इस ग्रन्थ में प्रत्येक स्कंध का मुख्य विषय क्या है, प्रत्येक अवतारों

की मुख्य लीला क्या है उसका निरुपण है। साथ ही पूरे भागवत का विषय संक्षेप में है। इसलिए आप इस ग्रन्थ का पाठ कर भोजन करे, जिससे श्रीमद्भागवत के पाठ का फल आपको प्राप्त होगा और आपका निश्चयभी रह जायगा। शेष समय में आप श्रीमद्भागवत और अन्य शास्त्रों का अध्ययन करें।

श्री महाप्रभुजी की इस आज्ञा से श्री गोपीनाथजी बडे प्रसन्न हुए। वे नियम पूर्वक 'श्री पुरुषोत्तम सहस्र नाम' का पाठ करने लगे।

प्रारंभ से ही श्रीगोपीनाथजी का जीवन नियमित था। वे प्रभु की सेवा करने के उपरान्त शास्त्रों का अध्ययन और ध्यान करते। श्रीमहाप्रभुजी से उन्होने अणुभाष्य का अध्ययन किया। पन्द्रह वर्ष की उम्र में उन्हें महाप्रभुजीने काशी पढ़ने के लिए भेजा। वहाँ शांकर पीठ के आचार्य मधुसूदन सरस्वती के शिष्य श्री माधवसरस्वती से उन्होंने शास्त्रों का अध्ययन किया। वे अध्ययन में विलक्षण, विद्यारसिक तथा तेजस्वी थे। दो वर्षो में उन्होंने विद्याध्ययन पूर्ण किया।

श्री गापीनाथजी का विवाह सत्रह वर्ष की आयु में हुआ। उनकी बहुजी का नाम श्री पायम्माजी - श्री प्रियाजी था। श्री महाप्रभुजी ने श्री पायम्माजी को ब्रह्मसंबंध दीक्षा दी थी।

भगवद् आज्ञा होते ही श्रीमहाप्रभुजीने भूतल त्याग करने का निश्चय किया। तब श्री गोपीनाथजीने श्रीमहाप्रभुजी को दंडवत करके अंतिम आज्ञा चाही। तब श्री महाप्रभुजीने 'शिक्षा श्लोकी' ग्रन्थ द्वारा आज्ञा की थी कि, 'तुम्हारा सर्वस्व प्रभुको मानना, उनसे कभी बहिर्मुख होना नहीं।'

श्री महाप्रभुजी के भूतल त्यागने के बाद श्रीगोपीनाथजी पुष्टिमार्ग के आचार्य के पद पर बिराजे।

श्रीगोपीनाथजी ने श्रीनाथजी की सेवा प्रणालिका बहुत व्यवस्थित की। वैष्णवों को आदर्श वैष्णवी जीवन कैसे जीना चाहिए, इसे समझने के लिए

'साधन दीपिका' नाम ग्रन्थ की रचना की। इस ग्रन्थ की विशिष्टता यह है कि इसमें महाप्रभुजी के अनेक ग्रन्थों के अभ्यास का दोहन है। श्री महाप्रभुजी की मूल आज्ञाएँ, और शास्त्रों की आज्ञाओं के मूल श्लोक उसमें लिखे गये हैं। श्री गोपीनाथजी को वैदिक मार्ग तथा जीवन प्रणाली की ओर विशेष रुचि थी। परिणामत: मानवजीवन के सोलह संस्कार, स्नान, संध्या, जप, होम, स्वाध्याय पितृतर्पण. आदि ठीक ढंग से करने की उन्होंने आज्ञा की थी।

इसके बाद 'सेवा श्लोक:' नामक दूसरे ग्रन्थ की रचना भी की थी, जिसमें प्रभुकी विभिन्न समयों पर की गई लीलाओ के भाव तथा सेवा का प्रकार बताया गया है।

श्रीमहाप्रभुजी के अपूर्ण कार्यो को आगे बढ़ाने तथा पुष्टिमार्ग के प्रचार करने के लिए श्रीगोपीनाथजी ने भी पूर्व भारत की यात्रा की थी। इस यात्रा में उन्हें एक लाख रुपयों की भेंट प्राप्त हुई थी। आचार्य पद के प्राप्त होने के बाद यह उनकी प्रथम यात्रा द्वारा प्राप्त भेंट को उन्होंने श्रीनाथजी को अंगीकार करा दी थी। इस तरह उन्हें द्रव्य के प्रति आसक्ति नहीं थी। उनका जीवन वैराग्य पूर्ण था।

उन्होंने गिरिराजजी में रहकर प्रभु को बहुत लाड़ लड़ाये। यहाँ उन्होने श्रीगोपाल मंत्र का पुरश्चरण सिद्ध किया था। पुरश्चरण अर्थात सवा करोड मंत्र, नियम पूर्वक, समय की मर्यादा में जप करना। इस समय उनकी उम्र पच्चीस वर्ष की थी। श्री गोपीनाथजी का सेवा के बाद का समय गोपाल मंत्र के अनुष्ठान में तथा यज्ञ यागादि में व्यतीत होता था। छोटे भाई श्रीगुसांईजी तथा उनके बीच स्नेह का अटूट संबंध था। श्री विठ्ठलेश भी श्रीगोपीनाथजी के प्रति संपूर्ण सन्मान रखते और उनकी सर्व आज्ञाओं का पूज्य भावसे पालन करते थे।

उत्तर तथा पूर्व यात्राओं के बाद श्री गोपीनाथजी श्रीद्वारिकाजी की यात्रा के लिए गुजरात भी पधारे थे। वे अहमदाबाद में रुके। रात्री में उन्हें स्वप्न

आया कि पास के कुँवे में श्रीमदनमोहनजी का स्वरुप बिराजता है। प्रा:तकाल उस स्वरुप को बाहर पधराकर बड़ा उत्सव किया था।

द्वारिका से वापस अडेल पधारे। तब आपश्री के यहाँ श्री पुरुषोत्तम नाम के पुत्र का प्राकट्य हुआ। आपश्रीको लक्ष्मी तथा सत्यभामा नाम की दो कन्याएँभी थी।

श्री गोपीनाथजी को श्रीजगन्नाथजी का यात्रा धाम विशेष प्रिय था, वहाँ आप दूसरी बार वि. सं. १५९५ में पधारे थे। अट्ठाईश वर्ष की छोटी उम्रमें अपने जीवन की सारी वृत्तियों को भगवद्सेवा व स्मरण में लगा दी थी। रात्री को बहुत कम सोते। वे भगवद विरह में विशेष समय व्यतीत करते। अपने कुटुम्ब की सारी जवाबदारी अपने छोटे भाई श्री विठ्ठलेश को सोंप दी थी। अब वे अहर्निश कृष्ण चिन्तन के अतिरिक्त कुछ करते नहीं थे। वे सबकुछ छोड़कर तीसरी बार श्रीजगन्नाथजी पधारे, बहाँ रात-दिन भगवद् मय जीवन जीने लगे।

एक दिन प्रा:तकाल जल्दी जागे, तब उनका मन, वाणी तथा हृदय सब प्रभुको पुकार रहा था। मन्दिर के द्वार खुलते ही वे तत्काल मन्दिर में प्रभु की ओर दौडे, वहीं सदेह अन्तर्धान हो गए। जगन्नाथजी के सेवक उन्हें जगन्नाथजी में समाते देख स्तब्ध रह गये। इस तरह तीस वर्ष की छोटी उम्र में श्रीगोपीनाथजी ने भूतल त्याग किया। तब उनके पुत्र श्री पुरुषोत्तमजी की आयु दस वर्ष की थी, इससे पुष्टिमार्ग की सारी जवाबदारी श्रीगोपीनाथजी के छोटे भाई श्रीविठ्ठलेश प्रभु के माथे आगई।

श्री पुरुषोत्तमजी ने भी चौदह वर्ष की छोटी उम्र में भूतल त्याग किया। इससे श्रीगोपीनाथजी की बहुजी को बड़ा आघात हुआ। वे अपनी पुत्रियों को लेकर दक्षिण में अपने पिता के यहाँ चले गये। थोड़े समय में श्री पायम्माजीनें भी भूतल का त्याग किया। इससे श्री गुसांईजीने अपने दोनों भतीजियों, श्री लक्ष्मीजी तथा श्री सत्यभामाजी को अपने पास बुला लिया। वे दोनों बहुत विद्वान, भगवद् सेवा परायण और भगवद् सेवा में तत्पर थी। सब लोग उनके प्रति भाव रखते। दोनों नवनीत प्रियाजी की सेवा सुन्दर तरीके से करती थी।

श्री गुसांइजी ने घर में सबको आज्ञा दे रखी थी कि, 'नरवरगढ़ के राजा आसकरणजी महान भगवत् भक्त है, उन्हें मानसी सेवा और व्यसन दशा प्राप्त हैं। भूख-प्यास तक का भान नहीं हैं। इसलिए जब आवें तब, उस समय जो सामग्री तैयार हो वह खिलाना।' एक समय आशकरणजी आये, तब श्री लक्ष्मीजी नवनीत प्रियाजी को राजभोग धरने जा रहे थे। राजभोग का वह थाल श्री लक्ष्मीजी ने आशकरणजी को परोस दिया। इससे श्रीगुसांईजी श्रीलक्ष्मीजी पर बहुत प्रसन्न हुए थे।

श्री गोपीनाथजी की दूसरी पुत्री श्रीसत्यभामाजी भी सेवा रसिक थी। वे दया के सागर की तरह थी। वे किसी का दु:ख देख नहीं सकती थी। एक समय वे जगन्नाथजी के दर्शन करने गयी थी, तब बंगाल देश के दीवान नारायण दास के वहाँ ठहरी थी पास में जैल (कैदखाना) थी, कैदियों को चाबुक से मारते थे, उस मारसे कैदी दु:खपूर्ण आवाज में चिल्लाते थे। उसे सुनकर श्री सत्यभामाजी बहुत दु:खी हुए और निश्चय किया कि इन लोगो का दु:ख दूर न हो तब तक भोजन नहीं करेगी। नारायणदास ने इस बात को बादशाह से कही, तब बादशाह को आश्चर्य हुआ, उनकी बात मानकर कैदियों को मुक्त कर दिया।

श्री गोपीनाथजी का वंश श्रीपुरुषोत्तमजी पर रुक गया। उनकी दोनों पुत्रियाँ बाल विधवा होने से नि:सन्तान थी।

इस तरह श्रीगोपीनाथजी त्याग की मूर्ति, अहंता-ममता रहित। वैराग्य पूर्ण हृदय वाले, भगवद् सेवा परायण, पितृसेवा तत्पर, श्री विठ्ठलेश सहित सारे परिवार को सुख देनेवाले और नियमानुसार जीवन यापन करने वाले थे। उन्हें वंदन करते श्री गुसांईजी कहते हैं -

'यदनुग्रहतो जंतुः सर्वदुःखाति-गोभवेत ।
तमहं सर्वदा वंदे श्रीमद् बल्लभनन्दनम् ।।'

(**अर्थ** : जिनकी कृपा से प्राणीमात्र सारे दु:खों में से मुक्त होते हैं ऐसे श्रीवल्लभनंदन श्री गोपीनाथजी को मैं वन्दन करता हूँ।)

दशदिगंत विजयी श्री पुरुषोत्तमजी निम्नानुसार वंदन करते है :

श्रीवल्लभ प्रतिनिधिं, तेजोराशिं दयार्णवम् ।
गुणात्तीतं गुणनिधिं श्रीगोपीनाथमाश्रये ।।

(**अर्थ** : श्रीवल्लभ के प्रतिनिधि स्वरुप, तेज के भंडाररुप, दया के सागर, सत्वादि गुणों के उपर सत्ता भोगनेवाले, और सद्‌गुणों के भण्डार रुप श्री गोपीनाथजी का मैं आश्रय करता हूँ।

श्री गोपालदासभाई 'श्रीवल्लभाख्यान' में श्रीगोपीनाथजी के स्वरुप का निम्नानुसार वर्णन करते हैं:

बलदेव श्री गोपीनाथ कहिये श्री विठ्ठल नंदानंद,
ते वेद पंथ विस्तारशे, जन आपशे आनंद ।

* * *

'श्री गोपीनाथजी सोहामणा, मणि-मरकत धनवाम रे रसना,
सुखदाता लघुभ्रातना, पूरण पुरुष प्रमाण रे रसना ।'

श्री गोपालदासजी 'श्रीवल्लभाख्यान' में दोनों बेटीजी का वर्णन नीचे अनुसार करते हैं:-

'लक्ष्मी सत्यभामा बेउ अग्रजनी अनुहार रे रसना,
श्री नवनीत प्रियाजी ने रिझव्या, सेव्या विविध प्रकार रे रसना ।'

अपने यहाँ इतिहास के प्रति उपेक्षित भाव होने से, श्री गोपीनाथजी के अलौकिक चरित्र की विशेष कडियाँ प्राप्त होती नहीं हैं।

३. विठ्ठलेश-प्रभुचरण :

कमल लोचन करुणा भर्या, श्री विठ्ठल सुखरास रे रसना,
दीठे ताप त्रिविध टले, स्मरण मात्र अधनाश रे रसना ।

श्री महाप्रभुजी के द्वितीय पुत्र का नाम श्री विठ्ठलनाथजी था। उन्हें वैष्णव, 'श्री प्रभुचरण' अथवा 'श्री विठ्ठलेशप्रभुचरण' कहते थे। मुगल बादशाह अकबर ने उन्हें 'गोस्वामी' की पदवी दी थी, इससे 'गोस्वामी' शब्द का अपभ्रंश होकर वे पुष्टिमार्ग में 'श्री गुसांईजी' के नाम से प्रसिद्ध हो हुए।

वि. सं. १५७२ के मार्गशीर्ष कृष्णपक्ष की नवमी शुक्रवार के शुभ दिन, मघ्यान्ह के समय आपका प्राकट्य काशी से कुछ दूर चरणाट (चुनार) नामक रमणीय स्थान पर हुआ था। वहाँ चरणाद्री नामका पर्वत है, उसके अपभ्रंश के रुप में वह प्रदेश चरणाट के नाम से जाना जाता है।

उनका प्राकट्य हुआ तब (श्री रामानुज संप्रदाय के) एक ब्राह्मण श्री विठ्ठलनाथजी ठाकुरजी का स्वरुप पधराकर श्रीमहाप्रभुजी के पास आया। और बिनती की-'यह भगवत् स्वरुप आप रखे।'

श्रीमहाप्रभुजी ने प्रसन्नता से आज्ञा की 'प्रभु! आज दो स्वरुप से हमारे यहाँ पधारे है। सेवक बनकर पुत्र स्वरुप से पधारे हैं और सेव्य स्वरुप बनकर भगवद् स्वरुप में पधारे हैं। इसलिए इस भगवद् स्वरुप के नाम पर से मेरे पुत्र का नाम भी 'श्री विठ्ठलनाथजी' रखता हूँ।'

'विठ्ठल' शब्द तीन अक्षर का है। विद्+ठ+ल इसका अर्थ होता है 'अज्ञानी को ज्ञानरुपी प्रकाश देनेवाला।

श्रीविठ्ठलेश बालपन में हृष्ट पुष्ट, मेघश्याम वर्णवाले तथा मोहक स्वरुप वाले थे। उन्हें बचपन से सेवाके संस्कार देने के लिए श्रीमहाप्रभुजी ने श्रीबालकृष्णलालजी का सुन्दर स्वरुप पधरा दिया था (आजकल यह स्वरुप

सूरत में विराजता है।) श्रीविठ्ठलेश के स्नेह से प्रसन्न होकर, श्री बालकृष्णलालजी उन्हें साक्षात दर्शन देते, उनके साथ खेलते और मित्र भाव से भोग धरी सामग्री की खेच-तान करते।

आठ वर्ष की आयु में आपका यज्ञोपवीत संस्कार किया गया। श्रीमहाप्रभुजी ने स्वयं उन्हें चार वेद, ज्योतिष शास्त्र, संजीवनी विद्या आदि का अध्ययन कराया। दूसरे शास्त्रों के अभ्यास के लिए श्री महाप्रभुजीने उन्हें काशी श्री गोपीनाथजी के साथ श्री माधवसरस्वती के पास भेजा था।

श्री विठ्ठलेश को अध्ययन के साथ साथ गंगाजी में तैरना, मल्ल कुश्ती करना, और घुड़सवारी करने का भी शोख था।

श्री विठ्ठलेश ने देखा की मेरा बड़ा भाई श्रीगोपीनाथजी श्रीमद्भागवत के अठ्ठारह हजार श्लोकों का पाठ करने के बाद भोजन करते हैं, तब उन्होंने भी निश्चित किया कि दशम स्कंध का पाठ पूर्ण करने के बाद भोजन करुंगा। इससे श्रीमहाप्रभुजी ने गोपीनाथजी के लिए 'श्रीपुरुषोत्तम सहस्त्र नाम' स्तोत्र की रचना की, वैसे ही श्रीविठ्ठलेश के लिए दशम स्कंध के सार रुप 'त्रिविध नामावली' की रचना की थी।

बचपन से ही श्री विठ्ठलेश संस्कृत भाषा में सुन्दर काव्य की रचना करते। श्री महाप्रभुजी की आज्ञा मानकर श्रीविठ्ठलेश ने गीता पर आधारित चार टीका ग्रन्थ की रचना की- (१) गीताजी के प्रथम अध्याय की टीका (२) गीता तात्पर्य (३) गीता हेतु (४) न्यासा देश वृत्ति।

श्री विठ्ठलेश की बचपन से ही नृत्य संगीत आदि कलाओं में बहुत रुचि थी। उन्होंने सारी कलाओं का विनियोग प्रभु की सेवामें, प्रभुके सुख के लिए किया था।

उनके पन्द्रहवे वर्ष की आयु में श्री महाप्रभुजी ने भूतल का त्याग किया था। अढारह वर्ष की उम्र में उनका विवाह श्री विश्वनाथभट्ट की सुपुत्री श्री रुकमणीजी के साथ हुआ था। उन्हें श्री गोपीनाथजी के भूतल त्याग के बाद

पुष्टिमार्ग के आचार्य पद से अलंकृत किया गया। श्रीनाथजी के सुख के लिए सेवामें से बंगालियों को दूर कर सांचोरा ब्राह्मणों को सेवा सोंपी थी। श्रीनाथजी के वैभव का विस्तार किया। गिरिराजजी की तलेटी में गोपालपुरा ग्राम बसाया। श्रीनाथजी के मन्दिर की व्यवस्था सुधारकर सुव्यस्थित की। अष्टयाम सेवा में अष्टछाप के कवियों की नियुक्ति की। जीवन को सुखी करने वाले राग, भोग, श्रृंगार का विनियोग भगवद् सेवा में कराया। नित्य तथा बारहमास की सेवा का क्रम सुन्दर, रसमय, तथा उत्तम बनाया था, उन्होने गोकुल को फिर से बसाया तथा अपने सेव्य श्रीनवनीत प्रियाजी को पधराकर स्वयं ने गोकुलवास किया।

आपश्री ने भारत परिक्रमा की थी, विशेष रुप से गुजरात का छ:बार भ्रमण किया। बादशाह अकबर, बिरबल, टोडरमल, मानसिह, तानसेन इत्यादि आपके प्रति भक्तिभाव रखते थे। आपके संग से अकबर भी वैष्णवी बंडी पहरते तथा तिलक करते। उसने जतिपुरा तथा गोकुल ग्राम आपश्रीको भेंट किए थे। अनेक शाही परवाने दिए थे। गढ़ा की रानी दुर्गावती, राजाभीम, जाम साहेब आदि राजा भी आपके सेवक थे।

आपने जाति बन्धन का भेदभाव न रखते हुए शरण में आने वाले सबको सेवक बनाया था। आपके सेवको में राय से रंक, विद्वानों से मूढ़, मुसलमानो से पठान, हरिजन, चोर, लुटेरे, पारधी, मछलीमार, वैश्या इत्यादि सेवक बने थे। आपके संग से वे सच्चे वैष्णव बने थे। आपका नियम था कि नित्य दो जीवों को शरण लेने के बाद ही भोजन करते थे। मनुष्यों के बाद कबुतर जैसे पक्षियों को आपने शरण में लिया था। आपके सेवको में २५२ वैष्णवों की वार्ता पसिद्ध है।

आपने व्रजभाषा के विकास में योगदान किया (घरमें तथा सेवामें संस्कृत के बदले ब्रजभाषा का उपयोग करना प्रारंभ किया) ब्रज में बसने वाले अन्य संप्रदाय के भक्त कवियों को भी आपने प्रोत्साहित किया। प्रतिदिन रात्री में

भगवद् वार्ता ब्रजभाषा में करते। आपने संस्कृत के अलावा ब्रजभाषा में कीर्तनों की रचना की है।

वैभव तथा समृद्धि के वातावरण में भी आपकी दिनचर्या सादगी पूर्ण, परोपकारी, त्यागमय, तथा भक्तिपूर्ण थी। प्रा:तकाल श्रृंगार तक की नवनीत प्रियाजी की सेवा पहुँचकर आप घोड़े पर सवार होकर, गोकुल से गिरिराज पधारते वहाँ राजभोग तक की सेवा पहोचकर स्वल्प भोजन करते। फिर भगवद् वार्ता तथा ग्रन्थ लेखन करते। शाम को गोकुल पधारकर, शयन तक की सेवा पहोंचकर, दूसरे दिन के लिए पुष्पमाला सिद्ध करते, फिर भोजन करते, रात्री में भगवद् वार्ता करते, फिर पोढ़ते।

परदेश में भोजन में दूध, घी, तथा मिष्टान का सेवन नहीं करते, भगवद् संबंध के बिना की वाणी, हास्य और शरीर के आराम का भी त्याग करते।

आपके द्वारा विकसित सेवामार्ग का प्रभाव अन्य संप्रदायों पर भी बडे प्रमाण में हुआ हैं, वे भी पुष्टिमार्ग का अनुसरण करके अन्नकूट, छप्पनभोग, हिंडोला आदि करते हैं।

स्वामीनारायण संप्रदाय के स्थापक श्री सहजानंदस्वामी ने स्पष्ट कहा है कि:-

श्री विठ्ठलेश द्वारा किया गया व्रतोत्सव निर्णय प्रमाणे ही व्रतोत्सव मनाना और उनके कहे अनुसार ही कृष्ण सेवा की रीति को स्वीकारे। इस तरह आपने अपने जीवन को वैष्णवता की सुगंध से महका दिया है।

आपने पचास से अधिक ग्रन्थों की रचना संस्कृत भाषा में की है। आपश्री की रसात्मक तात्विक द्रष्टि तथा पांडित्य की गौरव शाली शैली का दर्शन होता हैं। आपके मुख्य ग्रन्थों में 'अणुभाष्य' के अन्तिम देढ अध्याय, गायत्री कारिका, 'अष्टाक्षर निरुपण,' 'प्रेमामृत'स्तोत्र की टीका, गद्यार्थ, 'मधुराष्टक'की टीका 'विद्वन्मंडन,' 'भक्ति हंस' 'भक्ति हेतु निर्णय,' 'श्रृंगाररस मंडन' 'स्वपन्न दर्शन,' 'गुप्त रस,' 'सौन्दर्य पद्य' 'श्री सर्वोत्तम स्तोत्र,' 'श्रीवल्लभाष्टक,' 'स्फूरत कृष्ण प्रेमामृत,' 'श्रीटीप्पणीजी,' 'श्री वृत्रासुरचतु: श्लोकी,' 'षोडश ग्रन्थ, ग्रन्थों पर टीका' 'श्रीस्वामिनीजी विषयक स्तोत्र,' 'श्री यमुना अष्टपदी' इत्यादि का समावेश है।

आपका गृहस्थाश्रम बड़ा सुखी था, आपकी बहुजी श्रीरुकमणीजी से छ:पुत्र, चार पुत्रियाँ हुई थी। श्रीरुकमणीजी के लीला प्रवेश के बाद भगवद् ईच्छा स्वीकार कर श्री पद्मावतीजी के साथ दूसरा विवाह किया। उनसे एक पुत्र हुआ, इस तरह सात पुत्र नीचे अनुसार है-

१. श्री गिरधरजी २. श्री गोविंदजी ३. श्री बालकृष्णजी ४. श्री गोकुलनाथजी ५. श्री रघुनाथजी ६. श्री यदुनाथजी ७. श्री घनश्यामजी

आपकी चार पुत्रियाँ नीम्नानुसार है-

१. श्री शोभाजी २. श्री यमुनाजी ३. श्री कमलाजी ४. श्री देवकाजी।

आपके बड़े भाई श्री गोपीनाथजी के भूतल त्याग के बाद उनके पुत्र श्री पुरुषोत्तमजी की उम्र बहुत कम होने से श्रीनाथजी की सेवाकी सारी व्यवस्था देखते थे। श्रीनाथजी के मंदिर के अधिकारी श्रीकृष्णदासजी ने ऐसा विचार किया कि 'श्रीगोपीनाथजी के उत्तराधिकारी श्री पुरुषोत्तमजी हैं, श्री गुंसाईजी नहीं।' इससे श्रीकृष्णदास अधिकारीने श्रीगुसांईजीको आने नहीं दिया। आपश्रीने थोड़ा भी विरोध किये बिना चन्द्रसरोवर पर छ:माह अन्नत्याग कर श्रीनाथजी के विरह में रहे। इस अवधि में आपश्रीने श्रीजीबाबा को दर्शन देने के लिए विरह में सुन्दर विज्ञप्तिओं की रचना की। बिरबल को जब इस बात की खबर हुई तो कृष्णदास को जेल में डाल दिया, इसका समाचार पाते ही, श्री विठ्ठलेश ने कहाँ, 'श्री महाप्रभुजी के सेवक को केद (जेल) नहीं होना चाहिए, वह मुक्त न हो तब तक जल-पान नहीं करुंगा।' इस तरह अपकारका बदला उन्होंने उपकार से दिया।

श्रीविठ्ठलेश प्रभु की शरण में आने वाले मनुष्यों के जीवन में परिवर्तन लाया था। चोर चोरी छोड़कर खेती करने लगे। अफीमचियों ने अफीम छुड़ाई, कन्या विक्रय बंद कराया, ज्योतिष, शुगुन का आश्रय न लेना समझाया, सत्यमार्ग तथा महेनत से कमाया गया धन ही सेवा में उपयोग में लेना, वैष्णव दुष्ट अन्न तथा दुष्ट संग से दूर रहे, प्रामाणिक तथा नीतिमय जीवन जीना चाहिए। अैसी हिंसा का त्याग और गो सेवा का आग्रह रखना चाहिए। इसे उत्तम जीवन की अनेक बाते आपश्रीने आचरण कर बताई।

वि.सं. १६४२ के महा, कृष्ण पक्ष की सप्तमी को सत्तर वर्ष की आयु में स्वयंके परिवार को श्रीनाथजी के समक्ष उन्हें सोपकर विनंती की, 'यह वंश आपका है, इससे इसकी लाज भी आपकी है' अपने परिवार को आज्ञा की, 'श्रीनाथजी अपने कुल देवता है, उन्हें कभी पीठ न दिखाना। श्री महाप्रभुजी की आज्ञा का उल्लंघन न करें। हमेशा गिरिधरजी की आज्ञा में रहें।' शयन आरती के बाद श्री गिरधरजी को अग्नि संस्कार के लिए अपना उपरना दिया, अपने अन्तरंग सेवक गोविन्दस्वामी को लेकर, आप सदेह, श्री गिरिराजजी की कन्दरा के रास्ते निकुञ्ज लीला में पधारे। ऐसे आपके भूतल त्याग करते ही कई सेवको ने भी अपनी देह छोड दी।

४. श्री गुसांईजी के सात बालक:

श्री गुसांईजी के सात बालको को उन्होंने अपने हाथ सात भगवद् स्वरुप पधरादिये थे। श्री गुसांईजी के भूतल त्याग के बाद सातो भाईयों गोकुल में अपने अलग अलग भवन बनाकर उसमें प्रभु पधराकर सेवा करते थे। सब भाईयों में गिरिधरजी सबसे बड़े थे, इससे श्रीगुसांईजी ने गिरधरजी को श्रीनाथजी की सेवा तथा नवनीत प्रियाजी की सेवा भी सोपी थी। इसके बाद उनके हिस्से में श्री मथुरेशजी की सेवा भी प्राप्त हुई थी। श्री गुसांईजी की आज्ञा के अनुसार श्रीनाथजी की व्यवस्था की जवाबदारी श्रीगिरिधरजी पर थी। लेकिन सब भाईयों को श्रीनाथजी की सेवाका अधिकार था। सातो बालकों का संक्षिप्त परिचय देते हैं -

(क) श्रीगिरिधरजी :

श्रीगुसांईजी के प्रथम पुत्र श्री गिरिधरजी का प्राकट्य संवत् १५९७ के कार्तीक शुक्ल बारस मंगलवार को अडेल में हुआ था, उनका वर्ण गौर था, शरीर दुबला था, वे बहुत ही सात्विक स्वभाव के थे, षडगुण सम्पन्न थे। श्वेत धोती-उपरणा तथा सूक्ष्म श्रृंगार में हमेशा रहते थे। वे सारे शास्त्रों में प्रवीण थे। श्रीगुसांईजी ने जब विद्वत्मंडन ग्रन्थ की रचना की तब पूर्व पक्षी के रुप में आपने प्रश्न किये थे, उनका उपनाम गोवर्धन था। श्रीगुसांईजी उन्हें गोवर्धन नाम से संबोधित करते थे, उनकी बहुजी श्री भामिनी बहुजी थी। इनके तीन पुत्र थे।

उनके सेवा के ठाकुरजी, श्री मथुरेशजी और गोदी के ठाकुरजी नटवरलालजी थे। आपने मात्र छ:जीवों को ब्रह्मसंबंध दिया था। ब्रह्म संबंध प्राप्त होते ही सभी जीव लीला को प्राप्त हो गए थे। अभी भूतल पर बिराजते मोटे भाग के गोस्वामी बालक उनके वंश के हैं। उनके यशोगान का एक सुन्दर पद नीचे अनुसार है-

प्रकटे श्री विट्ठलनाथ के गिरधर सुखदाई;
मात श्री रुक्मणी कूखते प्रकट्यो शशिराई।
भई चाँदनी जगत में भक्ति सरसाई;
कृष्ण भजन सबही करे यस पावन गाई।
नवधा भक्ति दई सबे निज जन अधिकाई;
प्रेम सिन्धु में बोरि के कीने हरिराई।
स्वजनक आज्ञा मांगिके प्रतिवाद कहाई;
दूर कियों सब वादको हरिभक्ति दृढाई।
सेवत कृष्ण महाप्रभु गोकुल सुखदाई;
शेष महेश न पावही धरी ध्यान महाई।

दु:खहारी सब जगत के सुख करन महाई;
'रसिक दास'अति दीन हे तुम करो सहाई।

* * *

श्रीगिरधर नर भूषण, भ्रात सकल धुरिधार रे रसना;
वक्ता वेदशास्त्र तणा, श्रीभामिनीजी भरथार रे रसना ।

* * *

(ख) श्री गोविन्दरायजी :

श्री गुसांईजी के द्वितीय पुत्र का नाम श्रीगोविन्दरायजी था। उनका प्राकट्य वि. सं. १५९९ के कार्तिक कृष्ण अष्टमी गुरुवार को अड़ेल में हुआ था। वे थोड़े स्थूल थे तथा वर्ण गौर था। पितृचरण के प्रति उनका विशेष प्रेम था। वे व्याकरण शास्त्र में अधिक प्रवीण थे। आपका उपनाम 'राजाजी'था। आपका विवाह श्री राणीजी बहुजी से हुआ था। आपके चार पुत्र थे, आपके सेव्य स्वरुप श्री विट्ठलनाथजी हैं।

आपकी सेवामें अत्यन्त आसक्ति थी, आप किसी भी दशा में उत्थापन के दर्शन चुकते नहीं थे। इसलिए अपने पुत्र श्रीकल्याणरायजी की बारात में आप पधारे नहीं थे। श्रीगिरधरजी धर्मी स्वरुप का प्राकट्य है, तो आप षटधर्म पैकी प्रथम धर्म ऐश्वर्य स्वरुप का प्राकट्य है। आपका स्वरुप वर्णन इस कीर्तन के अनुसार है-

प्रकटे श्री विट्ठलनाथ के दूजे सुत माई ;
गुण ऐश्वर्य को रुप हे महिमा श्रुति गाई। ।
किनो पालन जगत को जिन किरणन राई ;
सुन्दर रुप सुहावनो मुख प्रफुलित माई ।
शेष महेश न पावही कहु अंत जाई ;
'रसिक दास'के तुम प्रभु करियेजु सहाई ।

* * *

श्रीगोविन्दजी आनंदमय, धर्म सकल नुं धाम रे रसना ;
श्रीराणीजी रंजन रुडला भक्त सकल विश्राम रे रसना ।

(ग) श्री बालकृष्णलालजी

श्री गुसाईजी के तीसरे लालजी बालकृष्ण लालजी का प्राकट्य वि.सं.१६०६ के भाद्रपद कृष्ण तेरस के दिन अडेल में हुआ था। आपका श्री अंग पुष्ट और वर्ण श्याम था। आपके नेत्र कमलदल के समान लंबे तथा सुन्दर थे। आप विशेष कर केशरी धोती और उपरना तथा भारी श्रृंगार करते थे। आपका स्वरुप कोटि कन्दर्प लावण्य मय अत्यन्त शोभायमान था। आपका उपनाम 'राजीव लोचन'था। आप वेद में पारंगत थे। आपके बहुजी श्रीकमलावती बहुजी थे। आपके छ:पुत्र थे। आपके सेव्य स्वरुप द्वारकाधीशजी हैं। आप नंदमहोत्सव के साक्षात स्वरुप थे। इस लीला का स्वरुप आप सदा ही प्रकट था। एक बार श्री नवनीत प्रियाजी का नंद महोत्सव के समय आपको तैयार होने का ध्यान रहा नहीं और नन्द महोत्सव में कूद पड़े। आप हंमेशा श्रीयशोदाजी का स्वरुप धारण कर प्रभु को पालने में सुलाते तब आपके स्तन से दूध की धाराएँ बहती। आप षट्गुणों में से अलौकिक 'वीर्य'गुण का प्रकट स्वरुप थे। आपकी एक बधाई नीचे अनुसार है-

आनंद भूतल परम हे आज,
श्री विट्ठलजी के गृह प्रकटे, श्री बालकृष्ण महाराज ।।
आश्विन वदी तेरस दिन शुभ, अति हरषे भक्त समाज ।
स्नेह भाव पूरन कृपा निधि दैवी उधरन काज ।।
अद्भुत सुन्दर प्रभु सब देवन सिरताज ।
रुक्मिनी माजी गर्भ भये हरि धर्मकी रखन लाज ।।
रुप अगाध अपार महिमा प्रभु कमल-दल-लोचन आज ।
पुष्टि भक्ति विस्तार करनहित आये प्रेम की बांधी पाज ।।
बजत बधाई होत मंगल धुनि निजजन सुख को काज ।
श्री'द्वारकेश'रिझवत नित्यलीला दासन के उपर गाज ।।

* * *

श्री बालकृष्णलालजी बालुडा, सुन्दर भीनवे वान रे रसना.
कमल-लोचन, कमला-पति छबी नहि को अे समान रे रसना ।।

(घ) श्री गोकुलनाथजी

श्रीगुसांईजी के चतुर्थ पुत्र श्रीगोकलनाथजी का प्राकट्य वि. से. १६०८ माघ शुक्ल सप्तमी शुक्रवार को अडेल में हुआ था। आप श्याम वर्ण के थे। आपका श्री अंग दुबला-पतला था। सफेद धोती उपरना तथा सारे श्रृंगार धारण करते थे। आपका उपनाम 'वल्लभ'था। आपके बहुजी का नाम श्री पार्वती बहुजी था। आपके तीन पुत्र थे। आपके सेव्य स्वरुप श्रीगोकुलनाथजी है।

आपका पांडित्य अगाध था। सेवामार्गीय सिद्धान्तों को सरलता से समझाने के लिए विपुल सहित्य की रचना की। जिसमें ८४/२५२ वैष्णवों की वार्ता, निजवार्ता, धरुवार्ता, बैठक चरित्र, हास्य प्रसंग, वचनामृत, श्रीसर्वोत्तम स्तोत्र, आदि टीकाएँ-गद्य मंत्र की टीका मुख्य है। आपने सेवा प्रकार, भाव भावना, लीला भावना और स्वरुप भावना विषयों के ग्रन्थों की रचना की है। श्री महाप्रभुजीने पुष्टिमार्ग की स्थापना की, श्रीगुसांईजी ने व्यवस्थित किया तथा उसका संरक्षण श्रीगोकुलनाथजी ने किया। आपश्री माला-तिलक के संरक्षक थे। जहाँगीर बादशाह के समय चिद्रुपनामक संन्यासी की शिकायत पर माला-तिलक पर प्रतिबन्ध लगा दिया तब श्रीगोकुलनाथजी ने संरक्षण किया। आप अत्यन्त प्रतापी थे। आप भूतल पर नब्बे (९०) वर्ष बिराजे। आपने नित्यलीला में प्रवेश किया तब उनके ७८ सेवको ने भी तत्काल प्राण छोड़ दिए। आप षड़धर्म मे से अलौकिक 'यश'धर्म के प्रकट स्वरुप थे। आपका एक कीर्तन नीचे अनुसार है-

प्रगटे श्रीगोकुलनाथजी श्रीविट्ठलनाथ के धाम बधाई ।
उग्र कियो यश याभूतल पर माला तिलक दृढाई। ।
गुण लावण्य माधुरी मुख छबि देख अनंग लजाई ।
दीनदयाल महा करुणामय कृष्णरुप सरसाई। ।
निज दासन पर करत सदा हित कीरति सबजग छाई ।
अति उदार श्री विट्ठलनंदन 'रसिकदास'शिर नाई। ।

श्री गोकुलपति अति गुण निधि, तात तणो प्रतिबिंब रे रसना.
श्री पार्वतीपति प्रेम शुं, शोभा सकल कुटुम्ब रे रसना.

* * *

(च) श्रीरघुनाथजी

श्री गुसांईजी के पाँचवे बालक श्रीरघुनाथजी का प्राकट्य वि. सं. १६११, कार्तिक शुक्ल बारस, बुधवार को अड़ेल में हुआ था। आपाका श्रीअंग पुष्ट, गौर वर्ण घुघराले बाल, और केशरी घोती, उपरना तथा भारी श्रृंगार से शोभायमान होते थे। आप अठारह पुराण तथा उप पुराणों में पारंगत थे। आपका उपनाम, 'श्रीरामचन्द्र' था। आपकी बहुजी श्रीजानकी बहुजी थे। आपको पाँच पुत्र थे। आपके सेव्य श्री गोकुलचन्द्रमाजी हैं। आपके लालजी श्रीगोपाललालजी ने अपने संप्रदाय की शाखा 'जय गोपाल' नामक मार्ग प्रवर्त किया था।

आपको श्रीगुसांईजी के स्वरुप में अत्यन्त आसक्ति थी। आपने 'श्रीनामरत्नाख्य स्तोत्र' द्वारा १०८ नामों की रचना की है। इसके बाद बहुत से ग्रन्थों की टीकाएँ रची। उसमें 'श्री सर्वोत्तम स्तोत्र,' श्रीपुरुषोत्तम सहस्त्र नाम, और षोडश ग्रन्थ मुख्य हैं। आप तथा आपके बहुजीने रामभक्त तुलसीदासजी को 'श्रीसीताराम' स्वरुप में दर्शन दिये थे। आपमें षडधर्म में से अलौकिक 'श्री'गुण प्रकट था। आपका एक पद निम्नानुसार है-

जयति रघुनाथ गनगाथ विख्यात्
जीत पंडितनको सरन लीने;
शास्त्र सब जान अभिमान कर व्रजभवन
आयो मद गर्व सब खंड कीने ।
कपट पट दूर कर प्रकट लीला धरी
भक्ति नव भात युत दशमी दीने;
जानकी-रमन गुन कोन कवि कहि सके
'सरसरंगी'सब चित्त छीने ।

श्रीरघुपति अति गज गति, रति पति करुं बलिहार रे रसना;
श्री जानकी जीवन ये सदा, मध्य मणि रत्नमय हार रे रसना ।

* * *

(छ) श्री यदुनाथजी :

श्री गुसांईजी के छठे लालजी श्रीयदुनाथजी का प्राकट्य वि. सं. १६१५ के चैत्र शुक्ल छठ बुधवार को अडेल में हुआ था। सफेद धोती उपरना और सूक्ष्म श्रृंगार आप धारण करते थे। आपके बहुजी श्रीमहाराणीजी बहुजी थे। आपके पाँच पुत्र थे। आप आयुर्वेद में प्रवीण थे। आपका उपनाम 'श्री महाराजजी' था। श्री गुसांईजीने आपको श्रीबालकृष्ण लालजी का स्वरुप पधरा दिया था। परंतु आपको इस छोटे स्वरुप में आसक्ति नहीं थी, इससे आप अपने तीसरे भाई श्रीबालकृष्ण लालजी के साथ बिराजते और श्री द्वारकाधीश प्रभु के साथ श्री बालकृष्ण प्रभुको पधराकर सेवा करते। आप नित्य आनंद में ही मग्न रहते। इस समय आपका वंश विद्यमान हैं। आपने 'श्री वल्लभ दिग्विजय' ग्रन्थ की रचना की थी। आप षड़धर्म में से 'ज्ञान' स्वरुप का प्राकट्य है। आपका कीर्तन निम्न अनुसार है-

श्री विट्ठलनाथ के धाम बधाई;
ज्ञानरुप प्रकटे श्रीयदुपति छठे सुवन सुखदाई ।
छठ अमल मधुमास सुखद ऋतु मघपन रूप दिखाई;
परम प्रवीण कृष्ण-सेवा-पर अतिकर भक्ति द्दढ़ाई ।
श्री महाराणी पति प्रिय पूरण अशरण शरण कहाई;
देत अभय फल निजदासन को कीरति त्रिभुवन छाई ।
कर्ता हर्ता कारण जगके पालन सुख दरसाई;
गुण अनंत कहा बरन सके मुख 'रसिकदास' शिर नाई ।

* * *

श्रीयदुपति जीवन जगतना, सदा मन प्रसन्न हुलास रे रसना;
नाह ते श्री महाराणी तणा, सुख माधुरी विलास रे रसना ।

(ज) श्री घनश्यामजी :

श्री गुसांईजी के सातवें लालजी श्री घनश्यामजी का प्राकट्य वि. सं. १६२८ के कार्तिक वदि तेरस के दिन मथुरा में हुआ था। आपका श्री अंग पुष्ट था। सफेद धोती-उपरना धारण करते थे। आप में वैराग्य गुण प्रगट था। आपके दो बहुजी थे - श्री कृष्णावत्ती बहुजी और श्री भागीरथी बहुजी। आपके दो पुत्र थे। आप सर्वशास्त्रों में विद्वान थे। आपका उपनाम 'प्राण वल्लभ' था। आपके सेव्य स्वरुप श्री मदनमोहनजी हैं। आप अहर्निश सेवामें बिराजते। आपको एक भी देहधर्म बाधा नहीं करता। गर्मी में आँखे मीचकर पूरी रात पंखा झलते। एक बार इस तरह पंखा झल रहे थे तब लोग श्रीठाकुरजी को पधरा ले गये थे। प्रा:तकाल प्रभु को जगाते समय दर्शन नही हुए। तब आपको अत्यन्त विरह हुआ और अन्नजल का त्याग कर दिया। श्री गुसांईजी रचित 'मधुराष्टक' की लीला का अवगाहन करते हुए आप सात दिवस तक विरह में भूतल पर विराजे, फिर सदेह लीला में पधारे। आपके कीर्तन निम्न अनुसार है :

प्रकट भये सदन दु:ख दवन
विट्ठलेश के सातवें सुवन घनश्याम अभिराम ।
कृष्ण तेरस मास सुभग मार्गशीर्ष नाम मध्य
पद्मावती कूख सिर नाय ।।
भयो दिश विदिश आनंद अतिरस छयो।
गयो दु:ख भाज मन भये पूरन काम ।।
कहा कहौ सुयश मुख एक रसना कही,
'रसिक' को दास नित्य करत परनाम ।।

* * *

श्री घनश्यामजी सीचें सुधा, जीवन सकल ब्रह्माण्ड रे रसना,
नाह ते श्रीकृष्णावती तणा, लिला नित्य अखंड रे रसना।

(झ) श्री गुसांईजी के बेटीजी :-

श्री गुसांईजी की बेटीजी श्री शोभा, श्री कमला, श्री यमुना और श्री देवका। श्री गुसांईजी के काका श्री केशवपुरी ने कहा, 'मेरे आश्रम चलाने के लिए मुझे एक बालक दो।' श्रीगुसांईजी ने उनकी इस विनंती को स्वीकार नहीं किया। तब आपश्री के काका ने श्राप दिया था कि, 'तुम्हारी लडकिया लग्न करके ससुराल नहीं जायगी, तुम्हारे यहाँ ही रहेगी।' श्रीगुसांईजी ने इस श्राप को आशीर्वाद माना, 'लड़कियाँ घर रहेगी तो बचपन के सेवा के संस्कारों के अनुसार सदा सेवा स्मरण में रत रहेगी, प्रभु को लाड लड़ायेगी, इससे प्रभु को सुख होगा।' इस तरह चारो बेटियों के विवाह जाती के विद्वान योग्य पति के साथ हुए थे लेकिन वे श्रीगुसांईजी के यहाँ ही रहते और श्रीनवनीत प्रियाजी की सेवामें हमेशा तत्पर रहते थे।

श्री शोभा बेटीजी का एक प्रसंग बहुत प्रसिद्ध है। एक बार श्रीनाथजी सात स्वरुपों के साथ अन्नकूट आरोगते थे, तब श्री शोभा बेटीजी भी अपने यहाँ प्रभुको राजभोग धरा कर दर्शन करने के लिए गए थे। रास्ते में श्री गुसांईजीने उन्हें रोककर आज्ञा की थी, 'तुम्हारे घर कौन बिराजते हैं? तुम वापस जाओ।' शोभा बेटीजी ने घर आकर राजभोग सराते सात स्वरुपो के साथ श्रीनाथजी के दर्शन अपने घर पर किये थे। ऐसे सेवारसिक चारो बेटीजी थे।

शोभा, यमुना, कमला, देवका, जेने सात बांधव सौभाग्य रे रसना।

* * *

५. श्री हरिरायजी

श्री हरिरायजी का प्राकट्य वि. सं. १६४७ भाद्रपद के कृष्ण पक्ष की पंचवी के दिन गोकुल मे हुँआ था। श्री महाप्रभुजी की चौथी पीढी में श्री कल्याण रायजी के वे पुत्र थे। श्री कल्याणरायजी श्रीगुसांईजी के दूसरे लालजी श्री गोविन्दरायजी के पुत्र थे।

श्री गुसांईजी के चौथे लालजी श्री गोकुलनाथजी ने श्री हरिरायजी को ब्रह्मसंबंध दिया था। वे बड़े विद्वान अनुभवी थे। आपके पितृचरण श्री कल्याणरायजी तथा गुरुदेव श्री गोकुलनाथजी से उन्होंने सम्प्रदाय का ज्ञान प्राप्त किया था। बचपन से ही आपको भगवद्‌वार्ता में बहुत रुचि थी। वे वैष्णवों की ओर भाव पूर्ण द्रष्टि से देखते। उन्होंने उनके सेव्य श्रीविट्ठलनाथजी को गोकुल से नाथद्वारा पधराये थे। सेवा के बाद का समय नाथद्वारा से थोड़ी दूर खिमनोर गाँव में एकान्त में बिताते तथा वहाँ ग्रन्थ लेखन करते।

उनके छोटे भाई श्री गोपेश्वरजी के बहुजी कुछ समय में लीला में प्रवेश करेगे ऐसा जानकर, श्री गोपेश्वरजी को यह वियोग का दुःख सहन करने में उपयोगी हो इसलिए श्री हरिरायजी प्रतिदिन एक पत्र लिखते थे। ये एकतालीस पत्र 'शिक्षापत्र' के नाम से प्रसिद्ध है। उस पर श्री गोपेश्वरजी ने ब्रजभाषा में टीका की रचना की है। 'शिक्षापत्र' आजकल वैष्णव घरों में नित्य नियमपूर्वक पढ़े जाते हैं। इसमें पुष्टिमार्ग के सर्व सिद्धान्त बड़ी सरल भाषा में हैं।

हरिरायजी पर श्रीनाथजी की बड़ी कृपा थी। श्रीनाथजी हरिरायजी को स्वानुभव कराते। श्रीनाथजी की सेवा में कुछ भी त्रुटी होने पर वे श्री हरिरायजी को बताते।

श्री हरिरायजी को वैष्णवोंकी मंडली मे साक्षात श्रीनाथजी के दर्शन होते थे। उनका स्वरुप अति सुन्दर था। इससे मोहित होकर, हृदय में विकारी भावना लेकर आपके पास आई राजकुमारी को श्री हरिरायजी ने यशोदाजी के स्वरुप में दर्शन कराकर उसके हृदय की विषय वासना निवृत्त की थी।

श्री हरिरायजी भूतल पर एक सौ बीस वर्ष बिराजे थे। उनके अनेक ग्रन्थ अभी प्राप्त हैं। उन्हें संस्कृत, ब्रजभाषा, गुजराती और पंजाबी में रचनाएँ की है। इनके छोटे बड़े ग्रन्थो की संख्या सौ से अधिक है। अपने संप्रदाय में श्री हरिरायजी को 'श्री हरिराय महाप्रभुजी' अथवा 'श्री हरिराय प्रभुचरण' के रुपमें संबोधित करने में आता है।

६. श्री पुरुषोत्तमजी

अपने पांडित्य से दशो दिशाओं में पुष्टिमार्ग की यश-पताका फहराने वाले 'दश दिगंत विजयी' श्रीपुरुषोत्तमजी का प्राकट्य वि. सं. १७१४ भाद्रमास, शुक्ल पक्ष एकादशी के दिन हुआ था। आप श्री महाप्रभुजी की छठी पीढ़ी में हुए थे। आपश्री के सेव्य स्वरुप सूरत में श्रीबालकृष्ण लालजी बिराजते हैं। आप बाल्यकाल से ही बड़े विद्वान थे। एक समय जब आप सात वर्ष के थे, तब एक संन्यासी उनसे शास्त्रार्थ करने के लिए आया था श्रीपुरुषोत्तमजी की मातुश्री ने संन्यासी से कहा कि, 'आज से तीसरे दिन मेरे लालजी आपसे शास्त्रार्थ करेंगे।'

मातुश्री की आज्ञा से श्री पुरुषोत्तमजी मन्दिर के तलघर में तीन दिन बिराजे। श्री सर्वोत्तम स्तोत्र का जप करने लगे। तीसरे दिन श्रीमहाप्रभुजी, श्रीगुसांईजी और बालकृष्ण प्रभुने प्रकट होकर आज्ञा की, 'आप सब ग्रन्थों का आदि और अंत पढ़लो, इससे सारे ग्रन्थ समझ में आजायेगें और तुम्हारी विजय होगी।' आपश्रीने उस अनुसार करके चौथे दिन उस संन्यासी के साथ शास्त्रार्थ किया और विजयी हुए।

आप उसी तलधर में बिराजकर ग्रन्थों को लिखवाते। आपके पास नौ लिखने वाले हमेशा रहते, वे उनके विचारों को लिख लेते। ग्रन्थ लेखन के लिए आप सूरत के पास घुमने का स्थान डुम्मस पधारते थे। आप जब परदेश पधारते तब अपने साथ बत्तीस गाड़ी भरके पुस्तके रखते। रास्ते में भी आप पुस्तकों को पढते व चिंतन करते रहते थे। इसके परिणाम स्वरुप आपने नौ लाख श्लोको का पुष्टिमार्गीय साहित्य दिया है। आप श्री हरिरायजी के समकालीन थे। आपश्री के ग्रन्थों में प्रमुख 'भाष्य प्रकाश,' 'सुवर्ण सूत्र,' 'निबंधावरण भंग,' 'श्रीसुबोधिनी प्रकाश,' 'प्रस्थान रत्नाकर,' 'वादमाला' इत्यादि हैं। आपश्री भूतल पर लगभग साठ वर्ष बिराजे थे।

* * *

७. श्रीवल्लभ कुल

पाँचसौ वर्ष से श्रीमहाप्रभुजी का वंश अखंड भूतल पर विराज रहा है। जिसे 'वल्लभकुल' के नाम से पहिचानते हैं। श्रीमहाप्रभुजी भगवान के मुखारविन्द स्वरुप अलौकिक अग्निस्वरुप हैं। श्रीगुसांईजी ने 'श्रीवल्लभाष्टक' में श्रीमहाप्रभुजी के स्वरुप का निरुपण करते हुए आज्ञा की हैं कि, 'श्रीमहाप्रभुजी वस्तुतः कृष्ण ही हैं।' श्रीवल्लभकुल का स्वरुप श्री गुसांईजी ने 'श्री सर्वोत्तम स्तोत्र' में समझाया हैं। श्रीमहाप्रभुजीने अपना संपूर्ण स्वरुप अपने वंश में स्थापित किया है। जिस प्रकार अग्नि में से निकला हुआ तिनका प्रज्जवलित होता है वहाँ तक अग्निस्वरुप ही है। श्री वल्लभकुल स्वरुप आज भी भूतल पर श्री महाप्रभुजी ही बिराजते हैं, इसलिए जैसे श्री महाप्रभुजी भगवद् स्वरुप थे उसी तरह श्री वल्लभकुल भी अलौकिक भगवद् स्वरुप है। श्रीवल्लभ और श्रीवल्लभकुल स्वरुप में कोई भेदभाव नहीं हैं। यह अनुभव कई भगवदीयों को पाँचसो वर्षो के मध्य हुआ है। उनके अनुभवो को (अपने को) कहा है। आजभी अनेक भगवदीय को यह अलौकिक अनुभव होते हैं।

'श्री सर्वोत्तम स्तोत्र' में श्री महाप्रभुजी का एक नाम है कि, प्राकृत मनुष्यों को मोहमें डालने के लिए कभी कभी विचित्र लीला करते हैं। श्री वल्लभकुल के चरित्रों में विपरित लीलाएँ भी आज दिखाई देती है। और इससे श्रीगुसांईजी ने अपने वंश का वर्णन करते आज्ञा की है कि, 'हमारा कुल निष्कलंक है कारण कि अग्नि में जो वस्तु पड़ती है वह जल जाती है। लैकिन उससे अग्नि को हानि होती नही है। अग्नि तो सदा प्रज्वलित रहती है। इसलिए अग्नि कभी अपवित्र होती नही है। उसी प्रकार यह अलोकिक अग्निस्वरुप ऐसा श्री वल्लभकुल भी जिस पर कृपा करता है उसे अपने आधिदैविक स्वरुप का अनुभव कराता है।'

पाँचसो वर्ष के इतिहास को देखते हैं तो अनेक प्रतापी महानुभाव आचार्य इस कुल में प्रकट हुए हैं। श्री हरिरायजी के पुत्र श्री कल्याणरायजी,

श्री धनश्यामजी के पुत्र श्री चाचा गोपेशजी, श्री योगी गोपेश्वरजी, श्री देवकीनंदनजी, श्री गोकुलोत्सवजी जैसे अनेक विद्वान गोस्वामी बालकोने बहुत प्रमाण में साहित्यरचना की है। 'श्री शुद्धाद्वैत मार्तण्ड' के कर्ता श्री गिरिधरजी भी बड़े विद्वान थे।

वर्तमान समय में श्री वृजरत्न लालजी महाराज श्री, श्री व्रजभूषण लालजी, मुम्बईवाले श्री गोकुलनाथजी, श्री कृष्णजीवनजी, श्री दीक्षितजी श्री श्याम मनोहरजी, श्री प्रथमेशजी इत्यादि बालको की विद्वत्ता और महानुभावता के सब साक्षी है। जिनके दर्शनो का लाभ अच्छी प्रकार मिला हुआ है। इसलिए श्रीवल्लभ कुल श्री महाप्रभुजी का ही स्वरुप है, ऐसी श्रद्धा और निर्मल बुद्धि उनके प्रति रखनी चाहिए।

गुजराती साहित्य के महाकवि और स्वामीनारायण सम्प्रदाय के अनुयायी कवि नानालाल ने भी श्री वल्लभकुल की साहित्य सेवा की प्रशंसा में कहा है कि मात्र भारत वर्ष में ही नहीं, जगत के इतिहास में ये साक्षर कुल वल्लभकुल की साहित्य सेवा अद्वितीय है। पृथ्वी के तल पर किसी स्थान पर एक वंशने वल्लभकुलने जैसी साहित्य सेवा की है ऐसी किसी ने की हो ऐसी जानकारी नहीं है। वल्लभकुल की साहित्य सेवा परंपरा जगत में बेजोड़ है। वल्लभ संप्रदाय के साहित्य उपासको की या साहित्य ग्रन्थो की नामावली छोटी नहीं है, ये सारे ग्रन्थ तो नहीं परंतु इनकी नामावली भी गुजरात के अग्रणी साहित्यकारमेंसे कईयों ने पढ़ी है?

श्री वल्लभ वंश की ऐसी बेजोड़ साहित्य सेवा के साथ ही श्री वल्लभवंश के साथ बराबरी में भट्ट वर्ग की साहित्य सेवा का भी ध्यान रखना चाहिए। श्री वल्लभ वंश के जवाई एवं भाणेज ऐसे भट्ट वर्ग से अनेक विद्वान महानुभाव हुए हैं। श्री लालुभट्टजी, श्री गट्टुलालजी, पंडित जगन्नाथ, श्री बालकृष्ण भट्टजी इत्यादि अनेक भट्टजीओने भी सम्प्रदाय के साहित्य में बेजोड़ सहायता की है।

* * *

२. निधि स्वरुप

श्री महाप्रभुजी 'चतु:श्लोकी' ग्रन्थ में आज्ञा करते हैं कि, 'हमेशा सर्वात्मभावसे ब्रज के अधिपति श्री कृष्णचन्द्र की सेवा करनी चाहिए।' श्रीगुसांईजीने इस आज्ञा को स्पष्ट करते हुए कहा है कि 'श्री यशोदाजी की गोद में खेलते बालस्वरुप की सेवा तथा वृन्दावन में गोपियों के साथ विहार करते किशोर स्वरुप का स्मरण करना चाहिए।' ऐसे अपने उपास्य स्वरुप 'सारस्वत कल्प' में प्रकट हुए श्री यशोदानंदन श्री कृष्ण हैं। उनकी विविधलीलाओं के विविध स्वरुप भूतल पर विराजते हैं। श्रीमहाप्रभुजी और श्रीगुसांईजीने अपने सेवकों को जो स्वरुप सेव्य करके सेवा के लिए पधरा दिए थे, वे स्वरुप सम्प्रदाय में 'निधि स्वरुप'के रुप में सुप्रसिद्ध हैं। इसके बाद भी गोस्वामी बालको ने भी अपने सेवको को सेव्य करके पधरा दिए स्वरुप भी बिराजते हैं, इन समस्त स्वरुपों में मुख्य निधि स्वरुप निम्नानुसार है, इन स्वरुपों के दर्शन करते उनकी स्वरुप भावना और लीला भावना का चिन्तन अवश्य करना चाहिए। तभी उस दर्शन और स्मरण का अलौकिक आनंद आता है।

१. श्री गोवर्धननाथजी :

श्री गोवर्धननाथजी अपन सबके कुल देवता हैं। उन्हें हम श्रीनाथजी के नाम से जानते हैं। पुष्टिमार्ग का यह मुख्य स्वरुप है।

यह स्वरुप विक्रम की पंद्रहवी शताब्दी में अपनी ईच्छा से श्री गिरिराजजी में से प्रकट हुआ था। उनकी प्राकट्य वार्ता प्रसिद्ध है। एक ब्रजवासी की गाय चुपके से सुबह-शाम अपना सारा दूध गिरिराजजी पर स्त्रवित कर देती थी। छानबीन करने पर गिरिराजजी की शिला के नीचे से इस स्वरुप की उर्ध्व भुजा के दर्शन हुए थे। प्रभु ने आज्ञा की थी कि, 'मैं

मेरी ईच्छा से बाहर पधारुंगा।' श्री महाप्रभुजी के प्राकट्य के समय ही श्रीनाथजी के मुखारविंदका प्राकट्य हुआ था। इसके बाद श्रीनाथजी बाबाने श्री महाप्रभुजी को आज्ञा की, 'आप मुझे बाहर पधराओ, मेरी सेवा प्रारंभ करो।' तब दक्षिण की परिक्रमा छोड़कर श्री महाप्रभुजी ब्रज में पधारे थे और श्रीनाथजी का सेवाप्रकार प्रारंभ किया था।

आपकी आज्ञा से पूर्णमल क्षत्रिय ने श्री गिरिराजजी पर श्रीनाथजी का सुन्दर मन्दिर सिद्ध कराया था। वहाँ बहुत समय तक बिराजे, फिर मुसलमानों के उपद्रव होने के कारण आप रथमें विराजकर नाथद्वार पधारे। अभी आप नाथद्वार में ही बिराजते हैं।

आपका स्वरुप किशोरलीला का स्वरुप है। श्री स्वामीनीजी की निकुञ्ज के नायक हैं। श्री गोवर्धन के नाथ हैं। इसलिए आपका नाम 'श्री गोवर्धननाथ' है। किशोरलीला की भावना का स्वरुप होने से श्रीजी बाबा को टोपी का श्रृंगार धराता नहीं है। आपका श्याम स्वरुप है। आप द्विभुज हैं। बाई भुजा उंची हैं। उसके द्वारा अपने भक्तो को बुलाते है। दाहिनी भुजा मुट्ठी बँधी हुई कमर पर रखी है। अँगुठे का दर्शन होता है, उसके द्वारा ये दर्शाते है कि मेरे शरण में आये जीवों को मेरी मुट्ठी में रखता हूँ। आसुरी जीव मेरे पास आ नही सकते। आपके दोनों चरण कमल सहज ही टेढ़े हैं। द्रष्टि सन्मुख है। पीठिका चौकोर है। आप निकुञ्ज के द्वार पर खड़े हैं। आपके दूसरे नाम 'देवदमन,' 'नागदमन' और 'इन्द्र दमन' है। आपकी पीठिका में श्री गिरिराजजी, श्री यमुनाजी, चार स्वामिनीजी, ब्रज भक्त, गाय, मोर, शेषनागजी, आदि विराजते हैं।

श्रीजी बाबा के स्वरुप चिन्तन नीचे के कीर्तन द्वारा सुन्दर तरीके से हो सकता हैं-

देख्यो री मैं श्याम स्वरुप ।
वाम भुजा उँचे कर गिरधर, दक्षिण कर कटि धरत अनूप ।।१।।

मुष्टिका बाँध अंगुष्ठ दिखावत, सन्मुख द्रष्टि सुहाई ।
चरन कमल युगल सम धरके कुंज द्वार मन लाई ।।२।।
अति रहस्य निकुञ्ज की लीला, हृदय स्मरण कीजे ।
'द्वारकेश' मन वचन अगोचर, चरन कमल चित्त दीजे ।।३।।

(२) श्री नवनीतप्रियजी :

श्री नवनीतप्रियजी श्रीनाथजी की गोदी के ठाकुरजी हैं। उनका प्राकट्य श्री यमुनाजी में से हुआ था। श्री महाप्रभुजी के सेवक, महावन के एक क्षत्राणी जमनाजल भरने गये थे तब यह स्वरुप उनके जल की गागर में पधारा था। वे क्षत्राणी उस स्वरुप को श्री महाप्रभुजी के पास पधरा लाये थे, तब श्री महाप्रभुजी के एक सेवक गज्जन धावन क्षत्रिय वहाँ बैंठे थे। उन्होंने विनंती करके यह स्वरूप सेवाके लिये पधरा लिया।' गज्जन धावन से सेवा बनी नहीं तब यह स्वरुप उन्होंने श्री महाप्रभुजी के यहाँ वापस पधरा दिया। इसके बाद यह स्वरुप हमेशा श्री महाप्रभुजी के यहाँ बिराजा। श्री गुसांईजी ने इस स्वरुप की सेवा की। गोकुल में अपने घर में आपश्री श्रीनवनीतप्रियाजी की सेवा करते। जब श्रीनाथजी ब्रज से नाथद्वार पधारे तब श्रीनाथजी के साथ ही नवनीतप्रियाजी भी नाथद्वार पधारे। श्री तिलकायत महाराजश्री का नवनीत प्रियजी पर स्वयं का अधिकार है। इससे श्री नवनीतप्रियजी का मन्दिर आज भी नाथद्वार में श्रीनाथजी के मन्दिर से अलग मोती महल की हवेली में स्थित हैं।

श्रीनवनीतप्रियजी का स्वरुप बाललीला का है। दशम स्कंध के आँठवे अध्याय के प्रमाण प्रकरण की रींगण लीला का यह स्वरुप हैं। यह स्वरुप छ:मास की वय का है। एक श्री हस्त में माखन है, दूसरे श्री हस्त में लड्डू है, पिछले चरणों से घुँटने चलते हैं। श्री यशोदाजी ने नेत्रों में अँजन लगाया है, इससे यह गौर स्वरुप अत्यन्त शोभायमान है।

इस स्वरुप का चिंतन नीचे के पद से सुन्दर तरीके से होता हैं-

लेजु गयो चित माखन प्यारो ।
तनक कमल मुख में द्वै दतियाँ इन आँखन ते होत न न्यारो ।।१।।
रिंगन लीला भाव जनावत, मर्यादा रहित यह रुप ।
कटि किंकिनी और पाय पैंजनी, फिरि चितवत हसत बजत अनुप ।।२।।
देखी सखी लपटे भुज भीडत नख छत कुच, कपोल कर परसत ।
कहेत, फिरत सब सौ नंदरानी देखी मैया बावरो व्हे दरसत ।।३।।
मुग्ध भाव गोपिन सौ सोचत, यह लीला कोउ अन्य न जाने ।
के जाने सेवा संयोगी 'दास' भावादिक लेश बखाने ।।४।।

* * *

(३) श्री मथुरेशजी :

श्री गुसांईजी ने अपने सात लालजीओं को सातों स्वरुप पधरा दिए। उसमें प्रथम स्वरुप श्री गिरिधरजी को श्रीमथुरानाथजी का पधराया। एक बार श्री महाप्रभुजी महावन से कुछ दूरी पर श्री यमुनाजी के किनारे करणावल नामके ग्राम में विराजे थे, तब श्रीयमुनाजी का किनारा टूट गया उसमें से ताड़ के वृक्ष जैसा ऊँचा चतुर्भुज स्वरुप प्रकट हुआ। बह स्वरुप श्री महाप्रभुजी के पास पधारा और सेवा की आज्ञा की। श्री महाप्रभुजीने विनंती की, 'आपके इतने बड़े स्वरुप की सेवा कलियुग में संभव नहीं है। मेरी गोदी में बिराजे तो आपकी सेवा संभव होगी।' श्री महाप्रभुजी की विनंती से वह स्वरुप उतना छोटा हो गया। उस समय आपके पास कंभोज के पद्मनाभदासजी वहाँ थे। उन्होंने श्री महाप्रभुजी से विनंती की, वह स्वरुप सेवा के लिए पधराया। पद्मनाभदासजी ने बड़े प्रेम से इस स्वरुप की सेवा की थी। इसके बाद उनके कुटुम्ब में बहुत समय तक यह स्वरुप बिराजता रहा। फिर श्रीगुसांईजी के यहाँ पधराया।

यह स्वरुप चतुर्भुज श्याम रंग का है। ब्रज का परम रसरुप स्वरुप है। किशोर लीला का स्वरुप है। उस स्वरुप की पीठिका में ब्रज के कुञ्ज-निकुञ्ज, श्रीयमुनाजी इत्यादि बिराजते हैं। ब्रज भक्तो के हृदय का मंथन करने के लिए 'श्रीमथुरेशजी' अथवा 'श्रीमथुरानाथजी' कहलाएँ। आपके नीचे के दक्षिण हस्त में शंख है। वह श्रीयमुनाजी का स्वरुप है। नीचे के बांये हस्तमें गदा है। वह श्रीकुमारिकाका स्वरुप है। उपरके दक्षिण हस्तमें पद्म है। वह श्री स्वामिनीजीका स्वरुप है। उपर के बाँये हस्त में चक्र है, वह श्रीचन्द्रावलीजी का स्वरुप है। आपकी पीठिका उपर से गोल है। दशमस्कंध के प्रमेय प्रकरण की, प्रथम अध्याय की, गोचारण लीला का यह स्वरुप है। इस स्वरुपने कुंभनदासजी को माखन चोरी करते दर्शन दिए थे। जिसमें दोनों श्रीहस्त से मटकी पकड़ी थी तथा दूसरे दो हाथ थे खिसक रहे पीतांबर को पकड़ने के लिए प्रकट किए थे, वही यह स्वरुप है। अभी आप कोटा में बिराजते हैं।

इस स्वरुप का चिंतन नीचे के कीर्तन द्वारा कर सकते हैं:-

सब ब्रज को रस-स्वरुप,
चार भुजा चारों कर आयुध, कमल स्वामिनी रुप ।।१।।

चक्र तेज चंद्रावली जुको, शंख श्रीयमुना जाणो,
गदा कुमारी श्याम वरन वपु, 'द्वारकेश' मन आणो ।।२।।

४. श्रीनटवरलालजी :

श्रीनटवरलालजी श्री मथुरेशजी की गोद के ठाकुरजी है, वे श्री महाप्रभुजी के सेव्य हैं और श्रीगुसांईजी के खेलने के ठाकुरजी थे। यह स्वरुप किसी वैष्णव के माथे बिराजा नहीं। अभी अहमदाबाद में श्रीव्रजरायजी महाराजश्री के माथे बिराजते हैं।

यह स्वरुप गौर वर्ण है, द्विभुज है। बारह महिने की उम्र के तृणावर्त मर्दन लीला का स्वरुप है। आपके दाहिने श्री हस्त में माखन है, बायें श्री हस्त में ममाट है। इस स्वरुप का प्राकट्य श्रीयमुनाजी मे से हुआ था।

आपश्री के स्वरुप का चिंतन नीचे के दोहे से होता हैं :

माट लिये माखन लिये, नूपुर बाजत पाय ।
नृत्यत नटवर लालजु, मुदित जसोदा माय ।।

४. श्री विट्ठलनाथजी :

श्री गुसांईजी ने अपने द्वितीय लालजी श्री गोविन्दरायजी को विट्ठलनाथजी का स्वरुप बंटवारे में पधरा दिया था। पूर्व प्रकरण १ में श्रीगुसांईजी के चरित्र में आपने देखा होगा कि श्रीगुसांईजी के प्राकट्य समय में एक ब्राह्मण के पास यह स्वरुप बिराज रहा था। वह ब्राह्मण इस स्वरुप को पधराकर श्री महाप्रभुजी के पास आया था और उसने यह स्वरुप महाप्रभुजी को पधरा दिया था। तब से यह स्वरुप श्री महाप्रभुजी के घर में बिराज रहा है। किसी वैष्णव के माथे विराजा नहीं।

इस स्वरुप के साथमें श्री स्वमिनीजी भी विराजते हैं। ये श्री यमुनाजी का स्वरुप हैं। इनके दोनों हाथों में कमल है। दशमस्कंध के फल प्रकरण के तीसवें अध्याय की अन्तरध्यान समय की किशोर लीला का स्परुप है। यह स्वरुप गौर श्याम वर्ण का है। नख से कटि तक गौर है और कटि से शिखा तक श्याम है। दोनों श्री हस्त कटि पर धारण किए हुए हैं। वाम हस्त में सछिद्र शंख है, दक्षिण हस्त में कमल है। दोनों चरण सरीखे हैं। श्री मस्तक के उपर किरीट धारण किया हुआ है। यह स्वरुप नाथद्वारा में विराजता है। इस स्वरुप की लीला भावना का कीर्तन नीचे अनुसार है:-

देख्यो अद्भुत रुप सखीरी सूर-सुता के साथ,
विवश भये देखकर सुन्दर कटि पर रही गये दोउ हाथ ।।१।।
ताते गौर चित्र श्यामल तन उपमा कहेत न आवे गाथ,
'द्वारकेश'प्रभु यह विधि देख, मैं तो कर लियो जन्म सनाथ ।।२।।

* * *

५. द्वारिकाधीशजी

श्री गुसांईजी ने तीसरे लालजी श्री बालकृष्ण लालजी को श्री द्वारिकाधीशजी का स्वरुप बटवारे में पधरा दिया था। यह स्वरुप सबसे प्राचीन स्वरुप है। सृष्टिकाल के आरंभ में ब्रह्माजी ने इस स्वरुप की सेवा की थी, इसके बाद ब्रह्माजी के वंशमें कर्दम ऋषि ने, देवहुति और कपिल भगवान ने भी सेवा की थी। बहुत वर्षो के उपरान्त सिद्धपुर के बिन्दु सरोवर में अपनी इच्छा से यह स्वरुप अन्तरध्यान हो गया था। फिर कई वर्षो बाद ब्राह्मण को स्वप्न में आज्ञा की थी फिर बाहर प्रकट हुआ था। इस स्वरुप की सेवा राजा अम्बरीष ने की थी। आबु पर्वत पर वसिष्ठ आश्रम में महर्षि वसिष्ठने इस स्वरुप की सेवा की थी। वहाँ से कुछ समय अयोध्या में राजा दशरथ के यहाँ रानी कौशल्या ने इस स्वरुप की सेवा की थी। गुप्त वेश में आबु पर्वत पर रहते पांडवों ने भी इनकी सेवा की थी। वहाँ से कभोज के दरजी के यहाँ यह स्वरुप पधारा था। दरजी के पाससे सेठ दामोदरदास सभरवाला ने इस स्परुप को पधराया। श्री महाप्रभुजी ने यह स्परुप सेव्य कर, सेठ दामोदरदास को सेवा का प्रकार सिखाया था। सेठ दामोदरदास ने राज वैभव पूर्ण सेवा की थी। फिर यह स्वरुप श्री महाप्रभुजी के यहाँ वापस पधारा था।

श्रीबालकृष्णलालजी का ऐसा मनोरथ था कि 'मेरे प्रभु को स्वामिनीजी हो तो अधिक आनंद आयेगा।' श्री गुसांईजी की कृपा से ब्रज में आये, गुंजावन में से श्री द्वारिकाधीशजी के स्वामिनीजी श्री बालकृष्ण लालजी को प्राप्त हुए थे। श्री गुसांईजी की आज्ञा से श्री स्वमिनीजी की सेवा गुप्त रीत से होती है। उनके दर्शन कराने में आते नहीं है। आजकल कांकरोली में बिराजते हैं।

यह स्वरुप किशोर लीला की भावना का स्वरुप है। यह आँख मिचोनी लीला तथा हिंडोला लीला की भावना का स्वरुप है। भागवत के दशम स्कंध के प्रमेय के सातवें अध्याय की लीला का स्वरुप है।

यह स्वरुप श्यामवर्णका, चतुर्भुज है। नीचे की वाम भुजा में शंख, उपरकी वाम भुजा में चक्र, उपर की दक्षिण भुजामें गदा और नीचे की दक्षिण भुजामें पद्म है। शंख, चक्र, गदा और पद्म श्रीस्वामिनीजी ने आँख मिचोनी

लीला में आलिंगन देते, समय हुए चिन्हों के अलौकिक भाव है। द्वार=दरवाजा, क=जल (यमुनाजी), यमुनाजी की निकुञ्ज के द्वारके नाथ अर्थात श्री द्वारकानाथजी। इस स्वरुप की लीला भावना नीचे के पद में बताने में आई है :

आज विहरत हरि कुंज निकेत,
मुरि मुरि आय युगल द्दग मीचे,
प्यारीजु अति उपज्यो हेत...(१)
हस्त कमल तारी दे मोहन, द्विभूज भरी उर लेत,
'द्वारकेश' प्रभु येही विध क्रीडत,
याते भलो बन्यों संकेत।...(२)

* * *

६. श्री गोकुलनाथजी :

श्री गुसांईजी ने उनके चौथे लालजी श्री गोकुलनाथजी को हिस्से में यह स्वरुप पधरा दिया था। यह स्वरुप श्री महाप्रभुजी को उनके स्वसुरजी ने कन्या दान में दिया था। यह स्वरुप श्री महाप्रभुजी कें घर में सदा ही बिराज रहा। किसी वैष्णव के माथे पधराया नहीं। आज यह स्वरुप श्रीमद् गोकुल में बिराज रहा है।

यह स्वरुप प्राचीन समय में 'श्रीनाथजी' और श्री गोकुलचन्द्रमाजी ऐसे नाम से पहचाना जाता था। लेकिन श्रीजीबावा को भी 'श्रीनाथजी' कहने का विशेष प्रसिद्ध हुआ। और पाँचवे धर के सेव्य श्री गोकुलचन्द्रमाजी है इससे यह स्वरुप 'श्री गोकुलनाथजी' के रुप नें विशेष प्रसिद्ध है।

इस स्वरुप के साथ दो स्वामिनीजी बिराजते हैं। बाई तरफ श्री राधिकाजी बिराजते हैं। उनके एक श्रीहस्त में चँवर है और दूसरे श्री हस्त में बीन है। दाहिनी ओर श्री चन्द्रावलीजी बिराजते है। उनके एक श्री हस्त में चँवर तथा दूसरे श्री हस्त में छडी हैं।

इस स्वरुप का वर्ण गौर है, चतुर्भुज स्वरुप है, वे कमल पर खड़े हैं। आपकी दक्षिण भुजा उँची है, उसमें गिरिराजजी है। वाम भुजा नीची है उसमें शंख है। उस शंख में बरसात का सब जल झेल लिया था। दूसरे दो हाथों से वेणुनाद करते हैं। दशमस्कंध के साधन प्रकरण के पच्चीसवे अध्याय की गिरिराज धरण लीला का यह स्वरुप है।

उस स्वरुप की लीला भावना निम्न कीर्तन में सुन्दर रुपमें व्यक्त की गई है :

ब्रजपति तुम बिन कौन करे,
उत मधवाको मान भंग करि, इत ब्रज गोपिन गोप वरै ॥१॥
वेणु बजावत करपर गिरिवर, वाम भुजा लै शंख धरै,
'द्वारकेश' प्रभु गौर वर्ण वपु, निगम प्रसासित विपद हरै ॥२॥

* * *

७. श्री गोकुलचन्द्रमाजी :

श्री गुसांईजी ने अपने पाँचवे लालजी श्री रधुनाथजी को यह स्वरुप पधरा दिया था। महावन की एक क्षत्राणी को श्री यमुनाजी में से यह स्वरुप प्राप्त हुआ था। उन्होंने यह स्वरुप श्री महाप्रभुजी के यहाँ पधरा दिया था। श्री महाप्रभुजी ने अपने सेवक महावन के नारायणदास की विनंती पर उनके माथे उन्हें यह स्वरुप पधरा दिया था। नारायणदास का शरीर अशक्त होने पर यह स्वरुप श्री गुसांईजी के यहाँ पधारा। आज कल यह स्वरुप कामवन मे बिराजता है।

यह स्वरुप श्याम वर्णका, द्विभुज है, आप ललित त्रिभंग है। पुष्टि पंथ के स्थापन के लिए वाम चरणारविंद की स्थापना है। आपका दक्षिणचरण सहज उन्नत है। उसकी उंगलियों का कुछ स्पर्श वामचरणको हैं। दोनों श्री हस्त से वेणुनाद करते हैं। भूमि पर कृपावलोकन करते हुए नीची द्रष्टि है।

श्रावण सुदी एकादशी के मध्यरात्री में ब्रह्मसंबंध की आज्ञा के लिए प्रकट हुआ यही स्वरुप था। दशमस्कंधके तामस फलप्रकरणकी बत्तीसमे

अध्यायकी महारासकी लीलाका यह स्वरूप है। आपका दूसरा नाम 'श्री मधुरेशजी' भी है। इस स्वरुप की स्तुति श्री महाप्रभुजीने 'मधुराष्टक' द्वारा की थी। इस स्वरुप की लीला भावना नीचे के कीर्तन में हैं :

अंग छबि निरखत लजित अनंगे,
चरन कटि ग्रीव कों नमित कर नंद सुत,
देत रसदान ललित त्रिभंगे ।।१।।
पुष्टि पथ थापि मर्जाद उलंघ कर,
चिह्न प्रकटित विविध अंग अंगे,
प्रेम आसक्ति स्नेह मुर्छा विवस,
विविध परिवेस जिये बेनु संगे ।।२।।
श्याम सुकुमार तन चितवत ललित,
अवनी पद लटकि जब चलत तब मान भंगे,
परम मोहन 'द्वारकेश' प्रभु मधुर अति,
गोकुलाधीश उच्छलित तरंगे ।।३।।

* * *

८. श्री बालकृष्णलालजी :

श्री गुसांईजी ने अपने छठे लालजी श्री यदुनाथजी को यह स्वरुप पधराया था। एक वक्त श्री महाप्रभुजी अडेल में बिराज रहे थे तब श्री यमुनास्नान करने पधारे थे। तब आपश्री की जनोई में लिपटकर यमुनाजी में से बाहर आया था। श्री महाप्रभुजीने घर पधराकर सेवा की थी। श्री गुसांईजी के बाल्य कालमें यह स्वरुप उनको पधरा दिया था। वे उनके साथ खेलते थे। और साक्षात् दर्शन देकर अलौकिक रस प्रकट करते थे। इस स्वरुप की सेवा वेष्णवों ने नहीं की। कुछ समय के लिए यह स्वरुप द्वारकाधीशजी के साथ बिराजता था। फिर सूरत पधारे थे।

अभी यह स्वरुप सूरत में बिराजता है। इस स्वरुप का मुखारविंद गौर है। ये द्विभुज हैं। दक्षिण भुजा में नवनीत तथा लड्डू है। दशम स्कंध के सातवें

अध्याय की शकट भंजन, और पूतनावध लीला का स्वरुप है। तीन मास की वय का अत्यन्त बालभाव का स्वरुप हैं।

आपकी लीला भावना नीचे के कीर्तन में व्यक्त हैं:-

नंदालय मधि बाल लाल रिंगनि घुटरन चलत,
दक्षिण हस्त नवनीत सुहावत लड्डु मध्य राजत ।।१।।
वाम हस्त भुव धरे चलत, चंचल गति छांजत,
कटि किंकिनी घुंघरुं घमक पद घुंघरु बाजत ।।२।।
मदनगुपाल रुपधर बालजु देखत वल्लभमन हुलसि,
आरति उतार गिरधर निरख बालकृष्ण मम शरणमसि ।।३।।

* * *

९. श्री मदनमोहनजी :

श्री गुसांईजी ने सातवे लालजी श्री घनश्यामजी को यह स्वरुप पधराया था। श्री महाप्रभुजी के मूल पुरुष श्री यज्ञनारायणभट्ट को सोमयज्ञ की पूर्णाहुति के समय अग्निकुंड में से प्रकट होकर वरदान देनेवाला यह स्वरुप है। यह स्वरुप श्री महाप्रभुजी को उत्तराधिकार मे प्राप्त हुआ था। किसी वैष्णव के माथे पधराया नहीं। हंमेशा श्री महाप्रभुजी के घर में ही बिराजा है। आजकल यह स्वरुप कामवन में बिराजता हैं। इस स्वरुप के साथ दो स्वामिनीजी बिराजते हैं। बाई ओर श्री राधिकाजी बिराजते हैं। और दाहिनी ओर श्री चन्द्रावलीजी बिराजते हैं। दोनो स्वामिनीजी के हाथों में कमल की कली है। यह स्वरुप गौरवर्णका है। द्विभुज हैं। श्री अंग पर जनोई का चिह्न है। दशम स्कंध के फल प्रकरण के उन्नीसवें अध्याय के रास लीला के लिए वेणुनादलीला का स्वरूप हैं।

नीचे के कीर्तन में इस स्वरुप की लीला भावना सुन्दर बताई गई है।

देख्योरी मैं सुन्दर वदन,
बेनु बजाय बुलाई लई है, पूछतरी क्यों छोड्यों सदन ।।१।।
धर्म छोडि निज धर्म कियो है, याते गौर भये नंद नंदन,
'द्वारिकेश' प्रभु येहि विधि देखी, न्याय के हेत मन्मथ-निकंदन ।।२।।

श्री कल्याणरायजी :

एक बार श्री महाप्रभुजी अड़ेल से कडा नामक गाँव में पधारे थे। वहाँ तालाब पर एक मन्दिर में प्राचिन स्वरुप था। गाँव के लोग अज्ञानवश उस देवता को 'देवी' के रुप में पूजते और सब कल्याणी देवी कहते। श्री महाप्रभुजी ने दर्शन करते ही, साड़ी हटाकर, उससे धोती और पाग बनाकर स्वरुप को पहनाई और उनका नाम कल्याणरायजी रखा। उस गाँव के बाबा वेणु कृष्णदास और यादव दास के माथे महाप्रभुजीने इस स्वरुप को पधरा दिए। उसके बाद यह स्वरुप श्री गुसांईजी के यहाँ पधारा। श्री गुसांईजी के चौथे लालजी श्री गोकुलनाथजी के तपेली के ठाकुरजी के रुप में यह बिराज रहा था।

छठे लालजी श्री यदुनाथजी के पुत्र श्री मधुसुदन लालजी की विनंती पर श्री गोकुलनाथजीने उन्हें यह स्वरुप पधरा दिया था। यह स्वरुप वर्तमान में बडोदरा में बिराजता हैं। यह स्वरुप लघु रास का स्वरुप है। चतुर्भुज है। श्याम वर्ण का है, अत्यन्त मोहक है। अभी इस स्वरुप के बाँयी और श्रीगोपीनाथजी और दाहिनी और श्री कपुररायजी बिराजते है।

श्री मुकुन्दरायजी :

एक बार श्री महाप्रभुजी श्री यमुनाजी की धारा में खडे रहकर 'श्री यमुनाष्टक' का पाठ कर रहे थे। तब 'मकुन्दरति वर्धिनी' इस पद का उच्चारण करते ही आपश्री की जनोई में लपटाकर यह स्वरुप श्री यमुनाजी में से बाहर पधारा था। श्री महाप्रभुजी अपनी एक भारत परिक्रमा में इस स्वरुप को अपने साथ पधरा कर ले गये थे। उसके बाद यह स्वरुप अपने घर में बिराजता रहा है। बहुत समय तक यह स्वरुप श्रीनाथजी की गोद में बिराजा। 'शुद्धाद्वैत मार्तण्ड' के कर्ता काशी वाले गोस्वामी श्री गिरधरजी महाराज ने तिलकायत महाराज के पास से यह स्वरुप मांग कर अपने माथे पधराया। वर्तमान में यह स्वरुप काशी में बिराज रहा है।

यह स्वरुप बाल लीला के भाव का ही स्वरुप है।

श्री पुष्टि मार्गीय सेव्य स्वरुप दर्पण

क्रम	सेव्य स्वरुप	किसके सेव्य	प्रगट होने का प्रकार	पहले किसने सेवा की	वर्तमान में कहाँ बिराजते हैं
१	२	३	४	५	६
१.	श्रीगोवर्धननाथजी	श्रीमहाप्रभुजी	श्री गिरिराज	रामदास चौहाण	श्रीजी द्वार
२.	श्री मदनमोहनजी	श्रीमहाप्रभुजी	श्री यमुनाजी	अच्युतदास	श्रीजी द्वार
३.	श्री बालकृष्णजी	श्रीमहाप्रभुजी	श्री यमुनाजी	अडेल की क्षत्राणी	श्रीजी द्वार
४.	श्री नवनीतप्रियजी	श्रीमहाप्रभुजी	श्री यमुनाजी	गजन धावन	श्रीजी द्वार
५.	श्री बालकृष्णजी	श्रीमहाप्रभुजी	-	अम्मा क्षत्राणी	श्रीजी द्वार
६.	श्री मदनमोहनजी	श्री गुसांईजी	-	चांपा भण्डारी	श्रीजी द्वार
७.	श्री लालजी	श्री गुसांईजी	-	शंकरभाई अधिकारी	श्रीजी द्वार
८.	श्री विट्ठलनाथजी	श्री महाप्रभुजी	श्री गंगाजी	श्री महाप्रभुजी	श्रीजी द्वार
९.	श्री स्वामिनीजी	श्री गुसांईजी	श्री यमुनाजी	श्री महाप्रभुजी	श्रीजी द्वार
१०.	श्री वृन्दावनचन्द्रजी	श्री महाप्रभुजी	---	आम्राके पुरुषोत्तमदास छत्री	श्रीजी द्वार
११.	श्री बालकृष्णजी	श्री महाप्रभुजी	---	राणा व्यास	श्रीजी द्वार
१२.	श्री द्वारिकानाथजी	श्री महाप्रभुजी	प्राचीन स्वरुप	दामोदरदास संभरवाला	कांकरोली
१३.	श्री मथुरेशजी	श्री महाप्रभुजी	श्री यमुनाजी	गोविन्ददास भल्ला	"
१४.	श्री श्यामसुन्दरजी	"	स्वईच्छासे	विष्णुस्वामी	उदयपुर
१५.	श्री वृन्दावनचंद्रजी	श्री गुसांईजी	---	ताजबीबी	उदयपुर
१६.	श्री बालकृष्णजी	श्री महाप्रभुजी	श्री यमुनाजी रेणुकासे	कटहरिया छत्री	जोधपुर
१७.	श्री मुरलीमनोहरजी	श्री घनश्यामजी	---	---	जोधपुर
१८.	श्री श्याममनोहरजी	श्री महाप्रभुजी	---	बडेसूरदासजी	चांपासेनी
१९.	श्री बालकृष्णजी	श्री गुसांईजी	---	हरिदास की बेटी जसोदाबाई	"
२०.	श्री मदनमोहनजी	"	---	सत्यभामा बेटीजी	"
२१.	श्री मदनमोहनजी	"	---	जैमल संग राजा की बहीन	"
२२.	श्री मुरलीधरजी	श्री गिरिधरजी	---	---	"
२३.	श्री बालकृष्णजी	"	---	---	"
२४.	श्री मथुरेशजी	श्री महाप्रभुजी	श्री यमुनाजी	पद्मनाभदासजी छोलावाला	कोटा
२५.	श्री गोपाल लालजी	श्री गुसांईजी	---	लाडबाई	बुंदी
२६.	श्री छोटे मथुरेशजी	श्री महाप्रभुजी	स्वईच्छासे	तुलसां	कोटा
२७.	श्री नवनीत प्रियाजी	श्री महाप्रभुजी	श्री गंगाजी	हरिवंश पाठक	कोटा

१	२	३	४	५	६
२८.	श्री मदनमोहनजी	श्री गुसांईजी	---	सहेजपाल दोशी	कोटा
२९.	श्री गोकुलनाथजी	"	---	हरिदास खवास	"
३०.	श्री व्रजेश्वरजी (श्रीस्वामिनीजी सहित)	"	---	सुरतके शाहुकारके बेटेकी बहु	"
३१.	श्री मदनमोहनजी	श्री गुसांईजी	---	तीरा केशव भट्टजी	कोटा
३२.	श्री बालकृष्णजी	"	---	बागरोधी विश्वनाथ दीक्षित	"
३३.	श्री बालकृष्णजी	श्री गुसांईजी	---	हरिकृष्ण भट्ट	कोटा
३४.	श्री गोकूल बिहारीजी	---	---	---	"
३५.	श्री बालकृष्णजी	श्री गुसांईजी	---	बागरोदी काशीभट्ट	"
३६.	श्री मदनमोहनजी	"	---	मोहनदास	किशनगढ़
३७.	श्री कल्याणरायजी	श्री दीक्षितजी	---	राजा स्वरुपसिंहजी	"
३८.	श्री महाप्रभुजी के प्राचीन चित्रजी	---	---	किशनगढ़ के राजा	"
३९.	श्री बालकृष्णजी	श्री महाप्रभुजी	---	जगन्नाथ तथा नरहर जोशी की माता	खेरालु
४०.	श्री गोकुलनाथजी	"	श्रीमहाप्रभुजी के स्वसुरकी और से	महाप्रभुजी	गोकुल
४१.	श्री बालकृष्णजी	श्री गोकुलनाथजी	---	श्री गोकुलनाथजी	गोकुल
४२.	श्री नवनीतप्रियाजी (राजा ठाकोर)	श्री महाप्रभुजी	---	रामदास सारस्वत	"
४३.	श्री बालकृष्णजी	श्री गुसांईजी	---	---	"
४४.	श्री बालकृष्णजी	श्री महाप्रभुजी	---	लडुवा वाली डोकरी	"
४५.	श्री मदनमोहनजी	श्री रघुनाथलालजी	-	---	गोकुल
४६.	श्री मदनमोहनजी	श्री महाप्रभुजी	वृन्दावन के वृक्ष मे से	प्रभुदास जलोटा	"
४७.	श्री बालकृष्णजी	"	-	वेणीदास माधवदास	"
४८.	श्री मदनमोहनजी	श्री गोकुलनाथजी	-	---	"
४९.	श्री मदनमोहनजी	श्री गुसांईजी	-	हरजी कोठारी	"
५०.	श्री मदनमोहनजी	श्री गिरधरजी	-	---	"
५१.	श्री मदनमोहनजी	श्री महाप्रभुजी	-	गोपालदास बाँसवाड़ा	"
५२.	श्री गजरायजी	श्री गुसांईजी	-	श्री ठाकुरजी के खेलने के खिलोने	"
५३.	श्री बालकृष्णजी	श्री रघुनाथलालजी	-	---	"
५४.	श्री द्वारकानाथजी	श्री रघुनाथलालजी	-	---	गोकुल
५५.	श्री बालकृष्णजी	श्री गुसांईजी	-	आग्रा के घणीधणीयाणी (बहार सोये वे)	गोकुल
५६.	श्री मदनमोहनजी (स्वामिनीजी सहित)	"	श्री यमुनाजी	ऋषिकेश	मथुरा
५७.	श्री मदनमोहनजी	"	श्री शालीग्राम मे से	आग्रा के कनोजिया ब्राह्मण (घणी घणीयाणी)	"
५८.	श्री द्वारकानाथजी	"	-	हरिदास मेहतावाला	"
५९.	श्री मथुरानाथजी	श्री गुसांईजी	-	गोकुल भट्टजी	"
६०.	श्री अद्भुतरायजी	"	श्रीनाथजी के प्रसादी चंदन के त्रिवेणी	श्रीगुसांईजी तथा श्री गोकुलनाथजी	"
६१.	श्री अष्टभुजाजी	श्री महाप्रभुजी		मावजी पटेल	"
६२.	श्री मदनमोहनजी	"	-	जगतानंद	श्री गिरिराजजी
६३.	श्री गोपाललालजी	श्री गुसांईजी	-	जयसिंहराजा के पुरोहित	कढी
६४.	श्री मदनमोहनजी (छोटा)	श्री गोकुलनाथजी	---	---	कामवन
६५.	श्री गोकुलचन्द्रमाजी	श्री महाप्रभुजी	श्री यमुनाजी	नारायणदास ब्रह्मचारी	कामवन
६६.	श्री बालकृष्णजी	श्री गुसांईजी	-	आग्राके घणीधणीयाणी (हीरा की जमीन पहचानने वाले)	कामवन
६७.	श्री मदनमोहनजी	श्री महाप्रभुजी	-	नरहर जोशी	"
६८.	श्री बालकृष्णजी	श्री रघुनाथजी	-	-	कामवन
६९.	श्री मदनमोहनजी	श्री महाप्रभुजी	अग्निकुण्ड	यज्ञनारायण भट्ट	"
७०.	श्री बालकृष्णजी	श्री घनश्यामजी	-	-	"
७१.	श्री मदनमोहनजी	श्री महाप्रभुजी	-	लघुपुरुषोत्तमदास	"
७२.	श्री मुकुन्दरायजी	"	-	रामदास भितरिया	काशी
७३.	श्री गोपाललालजी	श्री गुसांईजी	-	धारबाई	"
७४.	श्री गोपीनाथजी	"	-	श्री यमुना बेटीजी	"
७५.	श्री बालकृष्णजी	श्री गुसांईजी	-	थानेश्वर के वैष्णव	सिंहनद
७६.	श्री बालकृष्णजी	श्री महाप्रभुजी	-	रजो क्षत्राणी	मुम्बई
७७.	श्री नवनीतप्रियजी	श्री गुसांईजी	-	राधाजी रजपुत	"
७८.	श्री मदनमोहनजी	"	-	आग्राके सेठ (खरबुजा वाले)	"

१	२	३	४	५	६
७९.	श्री मोहनजी	”	श्री हस्तमें से	राजा आशकरण	”
८०.	श्री नवनीतप्रियजी	श्री महाप्रभुजी	-	राजा दुबे, माधवदुबे	”
८१.	श्री द्वारकानाथजी	श्री गुसांईजी	-	श्री शोभा बेटीजी	”
८२.	श्री बालकृष्णजी	”	-	बे भाई पटेल	”
८३.	श्री बालकृष्णजी	श्री महाप्रभुजी	-	गोपालदास जटाधारी	”
८४.	श्री बालकृष्णजी	श्री गुसांईजी	-	विसनगर के गोपालदास	”
८५.	श्री बालकृष्णजी	श्री गुसांईजी	-	रामदास वाणीया	मुम्बई
८६.	श्री बालकृष्णजी	”	-	एक डोकरी	”
८७.	श्री बालकृष्णजी	”	-	गुसांईदास सारस्वत ब्राह्मण	”
८८.	श्री बालकृष्णजी	”	-	गोविन्ददास सांचोरा	”
८९.	श्री लालजी	श्री महाप्रभुजी	श्री सरस्वती	सिंहनद की क्षत्राणी	”
९०.	श्री मदनमोहनजी	श्री गुसांईजी	-	-	”
९१.	श्री बालकृष्णजी	”	-	-	”
९२.	श्री बालकृष्णजी	”	-	गोपालदास	”
९३.	श्री मदनमोहनजी	श्री गुसांईजी	-	-	”
९४.	श्री बालकृष्णजी	”	-	माणेकचंद सेठ	”
९५.	श्री बालकृष्णजी	”	-	दिनकरदास	”
९६.	श्री मदनमोहनजी	”	-	महिधरजी और फूल बाई	”
९७.	श्री नटवरजी	श्री कल्याणरायजी	-	-	”
९८.	श्री मदनमोहनजी	श्री गोकुलनाथजी	-	-	वेरावल
९९.	श्री त्रिभंगरायजी	श्री महाप्रभुजी	श्री यमुनाजी	देवा कपुर	वेरावल
१००.	श्री लाडलेशजी	”	”	जीवनदास खत्री	”
१०१.	श्री मदनमोहनजी	श्री गुसांईजी	श्री यमुनाजी	गुजरात के एक पटेल	वेरावल
१०२.	श्री बालकृष्णजी	श्री महाप्रभुजी	श्री यमुनाजी	----	सुरत
१०३.	श्री नवनीत प्रियाजी	श्री गुसांईजी	---	जीवा पारेख	”
१०४.	श्री मदनमोहनजी	”	प्राचीन स्वरुप तालाब पर देवी रुप में पुजा	घघरी क्षत्री	बडोदरा
१०५.	श्री कल्याणरायजी	श्री महाप्रभुजी		बाबावेणु कृष्णदास यादवदास खवास	”
१०६.	श्री कपुररायजी	”	---	दामोदरदास की माता वीरा (प्रसुति में सेवाकी)	”
१०७.	श्री गोपीनाथजी	श्री गुसांईजी	---	----	”
१०८.	श्री बालकृष्णजी	श्री यदुनाथजी	---	----	”

१	२	३	४	५	६
१०९.	श्री नवनीतप्रियाजी	श्री गुसांईजी	----	कहानबाई	बडोदरा
११०.	श्री मकुन्दलालजी	”	-	भोलीबहु	”
१११.	श्री मदनमोहनजी	श्री महाप्रभुजी	श्री बाल कृष्णजीको एक डोकरी ने फुलेल लगाया	विरक्त वैष्णव	”
११२.	श्री रूपालालजी	श्री गोकुलनाथजी	-	-	”
११३.	श्री नटवर लालजी	श्री महाप्रभुजी	श्री यमुनाजी	श्रीगुसांईजी को खेलने के	अहमदाबाद
११४.	श्री श्यामलालजी	”	-	श्री गोपालदास (नरोडावाला)	”
११५.	श्री चन्द्रमालालजी	”	-	राजा मानसिंग	”
११६.	श्री गोपाललालजी	”	-	दक्षिणके वैष्णव (गुलाब के फूल वाले)	”
११७.	श्री बालकृष्णजी	”	-	भाईला कोठारी	”
११८.	श्री चत्रभुजरायजी	”	-	आपकी छोटी बहुजी	”
११९.	श्री मदनमोहनजी	”	-	मुरारी आचार्य खंभात वाले	”
१२०.	श्री गिरिधरजी	श्री गिरधरजी	-	-	भरुच
१२१.	श्री नागरजी	श्री गुसांईजी	श्री हस्त मेसे	राजा आशकरण	धोलका
१२२.	श्री रसिकरायजी	”	---	माधवदास दलाल	वीरमगाँव
१२३.	श्री अष्टभुजाजी	श्री महाप्रभुजी	त्रिवेणी	पद्मारावल	”
१२४.	श्री द्वारिकानाथजी	श्री गुसांईजी	-	श्री शोभा बेटीजी	अमरेली
१२५.	श्री बालकृष्णजी	”	-	दोभाई पटेल (देवी को कुंएमें डाली वह)	”
१२६.	श्री मुकुन्दरायजी	श्री महाप्रभुजी	-	कोटा के राजा	धारी
१२७.	श्री मदनमोहनजी	श्री गुसांईजी	-	पूर्व का राजा (दया भवैया वाला)	जुनागढ
१२८.	श्री मदनमोहनजी	श्री महाप्रभुजी	-	गोरकी समराई	”
१२९.	श्री मदनमोहनजी	श्री गुसांईजी	-	दया भवैया	”
१३०.	श्री दामोदरजी	श्री महाप्रभुजी	दामोदर कुंड	-	”
१३१.	श्री मदनमोहनजी	श्री महाप्रभुजी	-	नारायणदास ठट्ठावाला	पोरबंदर
१३२.	श्री मदनमोहनजी	श्री गुसांईजी	-	राजा जयमल संग	”
१३३.	श्री मदनमोहनजी	श्री महाप्रभुजी	श्री गंगाजी	काशीवाले सेठ	”
१३४.	श्री मदनमोहनजी	श्री गुसांईजी	-	अलीखान पठाण	”

१३५.	श्री चन्द्रमाजी	श्री गुसांईजी	-	ताजबीबी	पोरबंदर
१३६.	श्री बालकृष्णजी	"	-	कृष्णभट्ट	राजकोट
१३७.	श्री मदनमोहनजी श्री स्वामीनीजी सहित	श्री महाप्रभुजी	त्रिवेणी	गदाधरदास	जामनगर
१३८.	श्री नवनीत प्रियाजी	श्री गुसांईजी	-	एक डोकरी विमान वाली	"
१३९.	श्री मदनमोहनजी	श्री गुसांईजी	-	पुरुषोत्तम पुष्करणा	जामनगर
१४०.	श्री मदनमोहनजी	श्री गीरधरजी	-	पुरुषोत्तमदास के बेटा	"
१४१.	श्री मदनमोहनजी	श्री गुसांईजी	-	एक वैष्णव	जामनगर
१४२.	श्री मदनमोहनजी	"	-	भैया रुप मुरारी	"
१४३.	श्री नटवरलालजी	"	-	श्री गिरधरजीके खेलने के	"
१४४.	श्री बालकृष्णजी	श्री महाप्रभुजी	-	पुष्कर के बालकृष्ण	भुज
१४५.	श्री महाप्रभुजी के चरणचिन्ह चंदन के।	-	-	-	"
१४६.	श्री बालकृष्णजी	श्री महाप्रभुजी	-	मुसा बिल्लीवाली डोकरी	भेट शंखोद्वार
१४७.	श्री ब्रजनाथजी	श्री गुसांईजी	-	-	"

* * *

३. लीला स्वरुपो की भावभावना

(१) ब्रज का स्वरुप

रसो वै-स: पूर्ण पुरुषोत्तम प्रभु सृष्टि के प्रारंभ से पूर्व अकेले थे। स्वयं के आनंद और क्रिड़ा के लिए आपने अपने स्वरुप मे से लीला सृष्टि का प्राकट्य किया। क्योंकि आनंद के लिए दूसरे की आवश्यकता होती है।

आपश्री ने स्वयं का दूसरा स्वरुप श्री स्वामिनीजी के रुप में प्रकट किया। श्री स्वामिनीजी के साथ लीलाविहार करने के लिए आपने अलौकिक गोलोक धाम की रचना की। यह अलौकिक धाम ऐसा है कि जहाँ सब समय, सब ऋतुए एक साथ विद्यमान रहती है। सारी वनस्पति सभी ऋतुओं में फल-फूल देती है। इससे श्रीयुगल स्वरुप जब जिस लीला की इच्छा करता है, तब वह लीला सहज रुप से सिद्ध होती है।

प्रभुने भूतल पर प्रकट होने की इच्छा की तब अपने सारे गोलोकधाम को भूतल पर प्रकटाने का निश्चय किया, 'ब्रजमंडल'नाम से प्रसिद्ध प्रदेश में आधिदैविक गोलोक धाम को प्रभु ने पधराया। स्वयं के प्राकट्य के लिए सारी तैयारीयां परिपूर्ण करने के बाद प्रभुने 'सारस्वत कल्प' में ब्रज में अवतरित होना स्वीकार किया था। इस तरह ब्रज मण्डल प्रभुका अलौकिक गोलोकधाम का स्वरुप है। यह कमल के आकार का है। ब्रजमण्डल में पुष्टि पुरुषोत्तम-प्रभु हमेशा अपने लीला परिकर के साथ बिराजते हैं। उन भगवदियों को प्रभुकी कृपा द्रष्टि प्राप्त होती है। भगवदीयों को आज भी इस आधिभौतिक ब्रज मण्डल में गुप्त रीति से बिराजमान अलौकिक गोलोक धाम का साक्षात् दर्शन होते हैं।

प्रभु हमेशा अपने भक्तो के हृदय में विराजकर उनके स्वरुपानंद का दान करते हैं। इसलिए महाप्रभुजीने दशमस्कंध के 'सुबोधिनीजी' के प्रारंभ में

मंगलाचरण में कहा है कि, 'मेरे हृदय रुपी लीला सागर में, हृदय रुपी शेषनाग पर लीला परिकर सहित पोढ़े हुए पूर्ण पुरुषोत्तम, अनेक आधिदैविक लक्ष्मीरुपा ब्रज भक्तो द्वारा सेवित हैं।' इस तरह जहाँ प्रभु निवास करते हैं वह भक्त का हृदय होता है। इसलिए कमलाकार व्रजभूमि भक्त का हृदय है। श्री गुसांइजी के पीतांबरदास नामके वैष्णव की वार्ता के भाव प्रकाश में श्री हरिरायजी आज्ञा करते हैं 'ब्रजभगवदीय है, ब्रजके दर्शन करने से और ब्रज की मानसी करने से भगवद्भाव उत्पन्न होता हैं। इसलिए वैष्णव को एक बार ब्रजयात्रा अवश्य करनी चाहिए। इससे उसके हृदय में ब्रज का स्वरुप हृदयारुढ़ होगा।'

ब्रजरज में प्रभुने गोपियों के साथ हमेशा आनंद-विहार किया था, इससे व्रजरज प्रभुके चरणारबिंद और व्रजभक्तो के चरणारविन्द के स्पर्श से परम पुनित है। ब्रजरज के प्रत्येक कण में साक्षात् भगवद् स्वरुप विराजमान है, अपना ऐसा बड़ा भाग्य नहीं कि प्रभु साक्षात् अपने आलिंगन में अपने को समाले। लेकिन, ब्रजरज में लौटने से ब्रजरज में विराजते प्रभु के साथ अपने को अलौकिक आलिंगन का अलौकिक सुख अवश्य प्राप्त होता है।

ब्रज और व्रज के सारे जड़ चेतन पदार्थ स्वरुपात्मक है। इसलिए उनके अपनको इस स्वरुप की भावना का मन में चिंतन करना चाहिए। अलीखान पठान को श्रीगुसांईजी की कृपा से व्रज में वेणुधारी और पत्तो पत्तो में चतुर्भुजप्रभु के दर्शन होते थे, इसलिए उन्होंने नियम बनाया था कि, 'व्रज के वृक्ष का पत्ताभी कोई तोड़े नहीं।' व्रज के सारेवृक्ष भक्तो के स्वरुप हैं। कारण गीताजी में भगवान ने स्वयं आज्ञा की है कि, 'वनस्पति वैष्णव हैं।' ब्रज के वृक्षों में ऐसा भाव गोपियों ने रखा था। जब प्रभु अन्तर्धान हुए और गोपियाँ उन्हें ढूढ़ने निकली तब गोपियों ने मार्ग में खड़े वृक्षो से श्यामसुन्दर के बारे में पूछा था। गोपियों के हृदय में तब यही भाव था कि, श्री श्यामसुन्दर के दर्शन करने वाले ये वृक्ष वैष्णव हैं। दयालु है, इसलिए हमें अवश्य ही श्यामसुन्दर की खबर देंगे।'

व्रज के वृक्षों पर घोसला बनाकर रहने वाले पक्षी ऋषि मुनियों का स्वरुप है। हजारों वर्षो से भगवद् प्राप्ति के लिए घोर तपश्चर्या करने वाले ऋषि-मुनि भगवद् कृपा से पक्षी स्वरुप में आकर व्रज में बसे है। और दूरदूर से श्याम सुन्दर की अद्भुत लीला के दर्शन करके उनके कलरव द्वारा लीलागान करते हैं। इस तरह व्रज के तोते, मेना, मोर, इत्यादि सारे पक्षी पूर्व जन्म के ऋषि मुनि हैं।

व्रज का क्षेत्रफल ८४ कोस का क्योंकि है। कारण कि व्रज में ८४ प्रकार के सगुण - निर्गुण भाव वाले व्रज भक्त विराजते हैं। प्रत्येक भाववाले युथ की निकुंज व्रज के एक एक कोस के क्षेत्रफल में आती है। ऐसे व्रज के ८४ कोस के विस्तार में सारे व्रज भक्तो की निकुञ्ज है। और सारे व्रज भक्तो के भाव का स्वरुप धारण कर प्रभु उनकी निकुंज में पधार कर उन्हे स्वरुपानंद का दान करते हैं। इसलिए व्रज ८४ कोस का है।

श्रीमहाप्रभुजी बताते है, उस अनुसार भगवद् स्वरुप के बारह अंग है। और प्रत्येक अंग में छः अलौकिक धर्म और सांतवा धर्मी स्वरुप विराजते हैं। इस तरह बारह और सात का गुणनफल ८४ होता है। ब्रज में षड्गुण युक्त धर्मी स्वरुप ब्रजरुपी भगवदीय के द्वादश अंग में विराजमान है। इसलिए ब्रज ८४ कोस का है।

'सारस्वत कल्प' में व्रज में गिरिराजजी की तलेटी में से होकर यमुनाजी की एक धारा बहती थी और वहाँ चन्द्रसरोवर के पास का क्षेत्र 'वृन्दावन' के नाम से प्रसिद्ध था। इससे आजभी पुष्टिमार्गीय वैष्णवों का आद्य 'वृन्दावन' यह चन्द्रसरोवर है। अभी का वृन्दावन स्वेत बाराह कल्प की लीला का है।

श्रीमहाप्रभुजी व्रज में पधारे, उसके पहले व्रज उजाड़ था। श्रीमद् गोकुल का नामो निशान नहीं था। श्रीमहाप्रभुजी ने श्रीगोकुल का स्थान निश्चित किया। व्रज के लुप्त बहुत से स्थान आपने प्रकट किये। तब से फिर ब्रज की परिक्रमा का प्रारंभ हुआ हैं।

(२) स्वामिनीजी का स्वरुप :

श्रीस्वामिनीजी का नाम 'श्रीराधिकाजी' है। आपका प्राकट्य व्रज में बरसाना गाँव के राजा वृषभानजी के यहाँ **कीर्तिजी** की कोख से हुआ था। सारस्वत कल्प में प्रभु प्रकट हुए उसके दो वर्ष पहले श्रीराधिकाजी भाद्र पद शुक्ल अष्टमी को गोकुल के पास रावल गाँव में उनके मामा के घर प्रकट हुइ थी। भगवद दर्शन के विरह में दो वर्ष तक आँख खोली नहीं थी। लेकिन जब गोकुल में प्रभुका प्राकट्य हुआ और कीर्तिजी राधिकाजी को लेकर नन्द महोत्सव में गयी, तब प्रभु के दर्शन के समय ही श्रीराधिकाजी ने नेत्र खोले थे। तब दोनों स्वरुपो ने परस्पर नेत्र द्वारा अपना अलौकिक प्रेम प्रकट किया था।

श्री स्वामिनीजी का वर्ण चंपक वर्ण का है। आप हमेशा षोड़श वर्ष का वय धारण करते हैं। आपके श्रीअंग की कान्ति अत्यन्त सुन्दर है। प्रभु के मेघश्याम स्वरुप का सतत स्मरण होता रहता है। इस हेतु से आप अधिक्तर निलांबर धारण करती है। आप चौसठ कलाओं में प्रवीण है। इससे हमेशा प्रभुके साथ लीला विहार करते गीत, संगीत और नृत्य का आनंद मानती है और प्रभु को अपनी सारी कलाओं से प्रसन्न करती हैं। आप प्रभु के बिना एक क्षण रह नहीं सकती। आप सात्विक भाव के स्वरुप हैं। आप प्रभु की स्वकीया मुख्य प्रियतमा है। सारे व्रज भक्तो और प्रभु स्वयं भी आपकी आज्ञा के आधिन हैं।

आपका जन्मदिन भाद्र पद मास की अष्टमी के दिन राधाष्टमी के रूपमें मनाते हैं। उस दिन अपने मन्दिरों में प्रभु के सन्मुख ढ़ाढ़ीलीला होती है। ढ़ाढ़ी लीला का प्रकार व्रज का है। भाट-चारण की तरह ढ़ाढ़ी की एक जाती है, जो अपने यजमान के यहाँ जन्म तथा विवाह के अवसर पर उनके वंश का यशोगान करती हैं। मन अनुसार मांग कर दक्षिणा प्राप्त करती हैं। इस भाव से ढ़ाढ़ी और ढ़ाढ़ण नंदगाँव और बरसाना जाते हैं। श्री नंदरायजी और श्री वृषभानजी के यहाँ नृत्य कर उनकी कीर्ति का गान गाते हैं और दक्षिणा

प्राप्त करते हैं। प्रभु के जन्म दिन पर प्रभु के यशोगान गाने की भावना से ढ़ाढ़ी लीला होती है।

(३) चन्द्रावलीजी :

वेदकी श्रुतिओ ने प्रभु को प्रसन्न कर, प्रभु से विनती की थी कि, 'हमें आप के स्वरुपामृत का पान करायें।' तब प्रभुने प्रसन्न होकर उन्हें आज्ञा दी थी कि 'तुम' सारस्वत कल्प में व्रज में गोप कन्या के रुप में प्रकट होगे, मैं कृष्ण रुपसे प्रकट होउंगा, तब तुम्हारा मनोरथ पूर्ण होगा ।

वेद की श्रुतियाँ 'सारस्वत कल्प'में गोप कन्याओं के रुपमें गोप कुटुम्बो में प्रकट हुइ। लौकिक तरीके से उनके लग्न गोपकुमारों के साथ हुए थे परंतु श्रीश्यामसुन्दर के दर्शन से ये गोपांगनाए इतनी अधिक मोहित हो गई थी कि उन्हें संसार में आसक्ति रही ही नहीं थी, वे देह गेह का भान भुलकर मन से श्याम सुन्दर को ही वरण कर चुकी थी। ये गोपांगनाओं का समूह 'श्रुतिरुपा गोपियो' के रुप में प्रसिद्ध है। उनका लौकिक रुप से लग्न हुए होने से उनमें परकिया भाव है। ये गोपियाँ मुख्य रुप से अलौकिक तामस-भाव प्रदान है। इनके युथ की मुख्य स्वामिनीजी चन्द्रावलीजी हैं।

श्रीचंद्रावलीजी का प्राकट्य श्रीस्वामिनीजी से तीन दिन पूर्व, अर्थात भादरवा सुदी पंचमी के दिन बरसाना के पास रीढोरा गाँव में श्री चंद्रभानु गोप के यहाँ हुआ था। वे अत्यन्त स्वरुप वान हैं। वै गौर वर्ण से देदीप्यमान है। सारी कलाओं में निपुण हैं। श्रीस्वामिनीजी की प्रिय सखी है। श्रीयुगल स्वरुप की सेवा में तत्पर हैं। दान लीला की मधुर लीला की मुख्य नायीका हैं। इनमें परक्रिया भाव प्रधान हैं।

श्री ठाकुरजी को बायी ओर श्री स्वामिनीजी बिराजते हैं तो दाहिनी और श्रीचन्द्रावलीजी बिराजते है।

(४) श्री कुमारिकाएँ :

जिस पकार वेद की श्रुतिओं को प्रभु के स्वरुपामृत पान करने का मनोरथ

हुआ उसी प्रकार भगवान रामचन्द्रजी के समय में दंडकारण्य मे तपश्चर्यारत सोलह हजार ऋषि कुमारों श्रीरामचन्द्रजी के अलौकिक दर्शन कर त्याग और संयम को भुलाकर ऐसी प्रार्थना कर बेठे, 'आप हमारे पति हो।' मर्यादापुरुषोत्तम श्रीरामचन्द्रजीने उन्हें आज्ञा की 'अभी यह संभव नहीं है, लेकिन फिर सारस्वत कल्प में आप सब कन्याओं के रुप में प्रकट होगें तब मैं कृष्ण रुप में तुम्हारा मनोरथ पूर्ण करुंगा।'

सारस्वत कल्प में गोकुल के राजा श्रीनंदरायजी गौड देश (बंगाल) में से अपने घर काम के लिए सोलह हजार कुमारिकाओं को ले आये थे, ये कुमारिकाएँ मूल में तो कंस को भेंट देने के लिए थी, परंतु फिर उन्होंने अपने घर में ही घर काम के लिए रखली थी। ये कुमारिकाओं का कृष्ण के प्रति बाल्यावस्था से ही अद्‌भुत भाव प्रकट हुआ था। उन्होने श्रीकृष्ण अपने पति भाव के हेतु से कात्यायनी वृत किया था। और प्रभुने उनका ये मनोरथ सिद्ध किया था। ये सोलह हजार कुमारिकाएँ व्रजभक्तो में राजस भाव प्रधान थी। उनके मुख्य स्वामिनी श्रीराधा सहचरीजी हैं। महारास के समय गोपियों के अभिमान को दूर करने के लिए प्रभु अन्तर्धान हो गए तब श्री राधा सहचरी में दैन्य था इससे प्रभु अपने साथ पधरा गये थे।

श्री कुमारिकाओं ने बालभाव से नंदालय में प्रभुकी सेवा की थी। और विरुद्ध धर्माश्रयी प्रभुने बाल स्वरुप से उन्हें किशोर भावका अलौकिक सुख दिया था।

(५) श्रीयमुनाजी :

उपर गोपीयों के तीन मुख्य यूथ और तीन यूथाधिपति श्रीस्वामिनीजी के स्वरुप का अपनने स्मरण किया। अब चौथा यूथ है निर्गुण भावप्रधान व्रजभक्तोका। उनके स्वामिनीजी श्रीयमुनाजी है। श्रीयमुनाजी का प्राकट्य किसी गोप कुटुम्ब में लौकिक पुत्री की तरह हुआ नहीं। श्री यमुनाजी का प्राकट्य अलौकिक रुप से, प्रभुकी नित्य लीला भूमि श्रीगोलोक में हुआ था।

और वहाँ से ही आप स्वतंत्र तरीके से 'सारस्वत कल्प' में व्रज में पधारे थे और बिराजे थे।

पूर्ण पुरषोत्तम प्रभुने गोलोकधाम में श्रीस्वामिनीजी के साथ रमण किया तब उभय अलौकिक परमानंद स्वरुप के, द्रविभूत बने हृदय के ये अलौकिक रस, वेही श्रीयमुनाजी. यही स्वरुप, वही अलौकिक रस प्रभु की इच्छा से स्वरुपात्मक बनते, श्रीयमुनाजी का प्राकट्य हुआ। इससे श्रीयमुनाजी का आधि दैविक स्वरुप, आधि दैविक सूर्य ऐसे प्रभु के हृदय प्रदेश में से प्रकट हुआ है। यह स्वरुप प्रभु की तरह ही मेघश्याम वर्ण का है। प्रभु की तरह अष्ट गुण से वेष्टित है। श्री ठाकुरजी तथा श्री स्वामिनीजी दोनों की कृपा पात्र होने से आप लीला मध्ययाती है। श्री स्वामिनीजी मान करते हैं तब मान मिलाप की सेवा श्रीयमुनाजी ही करते हैं। जब श्री ठाकुरजी को ब्रज भक्तो के साथ महारास करना था, तब समानता के बिना महारास में आनंद आता नही है। स्वयंका भगवद् ऐश्वर्य तत्व प्रभुने श्री स्वामिनीजी श्रीयमुनाजीको सोपा था। ताकि गोपीजनों के साथ गोपीमय बनकर रासकियां। इसलिए श्रीयमुनाजी भी श्रीठाकुरजी का ही मुकुट काछनी का श्रृंगार धारण करते हैं।

'सारस्वत कल्प' की गोलोकधाम की सारी लीलाएँ भूतल पर प्रकट करने के लिए प्रभुने आज्ञा की तब आधिदैविक स्वरुप श्रीयमुनाजी अपने आध्यात्मिक स्वरुप सूर्य मंडल में विराजते श्रीनारायण के हृदय में से बाहर पधारे और उसमें गुप्त तरीके से विराज कर, भूतल पर हिमालय की पर्वत श्रेणी में 'कलिंद' नामके पर्वत शिखरपर आगमन किया। वहाँ से आधिदैविक जल प्रवाह स्वरुप से आप भूतल पर पधारे। उसमें आपके आध्यात्मिक और आधिदैविक दोनों स्वरुप गुप्त रीति से बिराजे। कलिंद पर्वत पर से पृथ्वी पर पधारे होने से आपका दूसरा नाम 'श्रीकालिंदीजी' भी पड़ा।

यहाँ एक बात विशेष रुप से याद करने की आवश्यकता है - द्वारिकालीला में प्रभु के चतुर्थ पटराणी कालिंदीजी से श्रीयमुनाजी भिन्न हैं।

श्रीयमुनाजी व्रजलीला में प्रभु के चतुर्थ प्रिया स्वामिनी के रुप में बिराजते हैं। ऐसे श्रीयमुनाजी सूर्यमण्डल द्वारा भूतल पर आये होने से आपके अन्य नामों में 'सुरसुता' रवितनया' इत्यादि नाम भी प्रसिद्ध हैं।

श्रीयमुनाजी परम दयालु और कृपालु है। जब कोई जीव प्रभु की शरण में आता है तब ये सबसे अधिक प्रसन्न होते हैं। जो कोई जीव प्रेमपूर्वक हमेशा उनका स्मरण करता है उसके सारे पाप नाश होते हैं। उसका प्रभुमें प्रेम होता है, उसका स्वभाव बदल जाता है। और प्रभु उसे अपना मानकर अपनाते हैं। श्रीयमुनाजी ने अपने किनारो के प्रदेशों पर प्रभु के विहार के लिए अनेक निकुंज सिद्ध किये हैं, जिससे गोपियों के साथ प्रभुके विहार का सुख सिद्ध कर दिया है। श्रीयमुनाजी सबको प्रिय है। श्रीकुमारिकाओं को कात्यायनी स्वरुपसे श्रीयमुनाजीकी ही कृपा फली थी। गोपांगनाओं ने नवरात्री में देवी स्वरुप से श्रीयमुनाजीकी कृपा से ही श्री श्यामसुन्दर की प्राप्ति की थी। ऐसे परम दयालु श्री श्यामसुन्दर श्रीयमुनाजी के आधिभौतिक जल प्रवाह के अपने को हमेशा दर्शन होते हैं। श्रीमहाप्रभुजी की आज्ञा हे कि, 'अपनको हमेशा यमुनाजी का पान खूब भाव से करना चाहिए। और श्रीयमुनाजी का सतत स्मरण करना चाहिए।' बहुत वैष्णवों के यहाँ श्रीयमुनाजी की सेवा भी होती है। २५२ वैष्णवों में किशोरीबाई की वार्ता प्रसिद्ध है। जिन पर यमुनाजी की पूर्ण कृपा हुई थी। श्रीयमुनाजी का ऐसा अलौकिक स्वरुप जानकर उनकी सेवा-स्मरण करना चाहिए। श्रीयमुनाजी को लौकिक जल प्रवाह समझना नहीं चाहिए। श्रीयमुनाजी बहिन है। इसलिए यमुना स्नान करने से अपनी यम यातना जावेगी। ऐसा सहजफल वैष्णवो विचार करे, सन्तोष नहीं करे तुर्य प्रिया श्रीयमुनाजी के साक्षात् दर्शन और सेवा के लिए सदा विरह ताप रखना चाहिए।

(६) श्रीगिरिराजजी :

जिस प्रकार श्रीयमुनाजी आधिभौतिक जल स्वरुप से व्रज में बिराजते हैं, वैसे ही श्रीगिरिराजजी आधिभौतिक शिला खंड़ स्वरुप से व्रज में बिराजते हैं। श्रीगिरीराजजी का भी अलौकिक आधिदैविक स्वरुप है। यह स्वरुप मूल गोलोकधाम में बिराजता था। प्रभु की आज्ञा से, प्रभु के लीला विहार के लिए श्रीगिरिराजजी 'सारस्वत कल्प' में व्रज में पधारे थे। श्रीगिरिराजजी का आधिदैविक अलौकिक स्वरुप के दर्शन श्रीमहाप्रभुजी और श्रीगुसांईजी ने अपने बहुत से वैष्णवों को कृपा करके कराये थे। ये वार्ता प्रसंगो में आपको श्रीगिरिराजजी के अलौकिक स्वरुप के बारे में कुछ जानने को मिलेगा।

श्रीमहाप्रभुजी ने अच्युतदास गौड़ नामके अपने एक सेवक को आज्ञा की थी कि, तुम श्रीगिरिराजजी की एक साथ तीन परिक्रमा करोगे तो तुम्हें श्रीगिरिराजजी के विविध, अलौकिक स्वरुप के दर्शन होगें। अच्युतदासने बहुत प्रयत्नों के बाद एक बार श्रीगिरिराजजी की तीन परिक्रमा एक साथ पूर्ण की। तब पहले उन्हें एक ग्वाल के दर्शन हुए, फिर सिंहके दर्शन हुए, फिर गाय के दर्शन हुए। तब श्रीमहाप्रभुजी ने आज्ञा की कि, 'ग्वाल के रुप में श्री ठाकुरजी स्वयं ने दर्शन दिए थे, सिंह स्परुप नें श्री गिरिराजजी थे और उन्होंने गाय के स्वरुप में ही फिर दर्शन दिए थे।' कभी कृपा पात्र वैष्णवों को श्रीगिरिराजजी नागस्वरुपमें भी दर्शन देते हैं।

श्रीगुसांईजी के एक सेवक ब्राह्मण, विरक्त वैष्णव थे। एक दिन वे गिरिराजजी पर अपने पैरो से स्पर्श करके उपर चढ़ने लगे तब श्रीगुसांईजीने आज्ञा की, 'श्रीगिरिराजजी मणिजड़ित साक्षात् भगवद् स्वरुप हैं, यह मूर्ख समजता नहीं है और उसका पैर गिरिराजजी को लगाता है।'

आपने 'ब्रह्मवैवर्त' पुराण का एक प्रसंग कहा, एक बार श्रीकृष्ण और नारदजी व्रज में बैठे थे, श्रीकृष्ण ने नारदजी से कहा, 'मुझे बहुत प्यास लगी है।' नारदजी पानी ढुंढ़ने गये। थोडी दूरी पर एक बड़ा सरोवर देखा, उसके किनारे दो लड़के तपस्या कर रहे थे। उनके पास बड़ा हड्डियों का पर्वत था यह देखकर नारदजी वापस आये। उन्होंने श्रीकृष्ण से इसका रहस्य पूछा,

श्रीकृष्ण ने उत्तर दिया, 'वे दोनों तपस्वी योगीश्वर है, वे श्रीगोवर्धन पर्वत के दर्शन के लिए तपश्या कर रहे हैं। हड्डियों का पर्वत हुआ इतने उनके जन्म व्यतीत हुए हैं। अभीतक उनको, दर्शन के लिए उनपर कृपा नहीं है। इस तरह श्रीगिरिराजजी लीलात्मक आनंदमय, भगवद् स्वरुप है। श्री महाप्रभुजी की कानी से अपने को दर्शन देते हैं। परंतु जीव को इसका ज्ञान नहीं हैं।'

श्री गिरिराजजी व्रज में पधारे, इस संबंध में पुराणों में एक कथा है। एक समय श्रीपुलस्त ऋषि पृथ्वी परिक्रमा करते शालमली द्वीप द्रौणाचार्य के यहाँ पधारे। वहाँ उन्होने श्रीगोवर्धन के दर्शन किए। उन्होंने द्रौणाचार्य से श्रीगोवर्धन को काशीपुरी लेजाने की आज्ञा चाही। श्री द्रौणाचार्य ने एक शर्त रखी कि, 'श्री गोवर्धन को मार्ग में नीचे न रखे, जहाँ रखोगे वहाँ ही रह जायेगा।' पुलस्त ऋषि गोवर्धन को लेकर काशी जाने को निकले। भगवद् आज्ञा व्रज में स्थिर होने की थी। इससे श्रीगोवर्धनने ऋषि के साथ व्रज में पधारते अपना भार बढ़ा दिया, ऋषि को थका दिया, श्रमित होने से बात भूलकर, ऋषि ने उन्हें नीचे पधरा दिये। जब वापस उठाने गये तो श्री गोवर्धन बोले, 'अपना करार पूरा हुआ है, अब मैं यही रहूंगां।' पुलस्त मुनि की इच्छा पूरी न होने से उन्होने शाप दिया, 'आप नित्य तलभार घटोंगें परिपूर्ण कलियुग आने पर आप संपूर्ण अन्तरध्यान हो जायेगें।' एसा कहा जाता है कि श्रीगिरिराजजी की उचाई इतनी अधिक थी कि, उनकी छाया सत्तर मील दूर मथुरा नगरी पर पड़ती थी। श्रीनाथजी व्रज से मेवाड़ पधारे, तब दंड़ोती शिलाकी उंचाई छः फूट थी, अब वह दंड़ोती शिला जमीन में तीन-चार फूट नीचे गहराई में है।

भगवदीयों ने गिरिराजजी के दो स्वरुप बताये हैं। श्रीगिरिराजजी को श्रीमद्भागवत में 'हरिदास वर्य' कहा है। इससे श्रीगिरिराजजी भगवदीय स्वरुप हैं। कारण कि आप सदा ही प्रभु के सुख के लिए सर्व प्रकार की सेवा करते हैं। श्रीगिरिराजजी की भीतर में चौदह कन्दराए है। इन सघन कन्दरिओं में प्रभु श्रीस्वामिनीजी के साथ हमेशा बिराजते हैं। इस तरह ये भगवदीय के हृदय में लीला परिकर सहित प्रभुका विप्रयोग धर्मी स्वरुप, हमेशा बिराजता होने से, श्रीगिरिराजजी साक्षात् भगवद् स्वरुप है। उनमें और भगवद् स्वरुप में कोई भेदभाव नही है। अपने मार्ग की ऐसी प्रणालिका है कि, श्री महाप्रभुजी और गुसांईजी के सेव्य निधि स्वरुप के साथ निधि स्वरुप सिवाय के सेव्य स्वरुप बिराज नहीं सकते, परंतु गिरिराजजी और स्वरुपों के साथ बिराज सकते हैं। श्री गिरिराजजी के स्वरुप का सुन्दर वर्णन श्री गोपालदासजीने 'वल्लभाख्यान' में किया हैं।

पद्मराग मरकत मणि स्फटिक श्रीगोवर्धन सोहे ।
ब्रह्मारुद्र त्यां कोण बापड़ा, श्री हरिना मन मोहे ।।

इस तरह, श्रीगिरिराजजी का आध्यात्मिक स्वरुप रत्न धातु मय हैं, तो आधिदैविक स्वरुप भक्त और भगवान का उभय स्वरुप है। 'सारस्वत कल्प' में भी श्रीगिरिराजजी की पूजा का प्रकार प्रभु ने प्रारंभ किया था, व्रजवासियों ने अन्याश्रय का दोष किया था तब सहस्त्रभुजा धारण कर श्रीगिरिराजजी ने अन्नकूट का भोग अंगीकार किया था। और इन्द्र की वृष्टि से, सातदिनों तक सारे व्रज का रक्षण किया था। ऐसा श्रीगिरिराजजी अत्यन्त अलौकिक भावात्मक स्वरुप है। आज भी गिरिराजजी का कोई अपराध होता है तो अपराध करने वाले को तुरंत ही दंड़ मिलता है। इसी तरह जो भक्त श्रीगिरिराजजी पर पूर्ण श्रद्धा रखते हैं उन पर श्रीगिरिराजजी तत्काल कृपा करते हैं।

श्री महाप्रभुजी ने श्रीनाथजी की ईच्छा से श्रीगिरिराजजी पर श्रीनाथजी का सुन्दर मन्दिर सिद्ध कराया था। वहाँ श्रीनाथजी बहुत वर्षो तक बिराजे थे। भावुक वैष्णव आज भी श्रीगिरिराजजी पर पैर रखते नहीं, कारण भगवद् स्वरुप रुप को अपने पैरों का स्पर्श किस तरह करें? गिरिराजजी का मुखारविंद 'सुन्दर शिला' के नामसे प्रसिद्ध है। यह दंडोती शिला के पास में है। दंडोती शिला के पास श्रीगिरीराजजी को दंड़वत कर, सामने बिराजते श्री महाप्रभुजी

की आज्ञा लेकर, श्री गिरिराजजी के मुखारविंद पर दूध से स्नान कराने में आता है। दूध यह स्नेह रस रुप हैं। दूध से भक्त अपने स्नेह का भाव प्रभु को अंगीकार कराते हैं। इसलिए स्नेह रसरुप बनकर, प्रभु को चढ़ाते हैं, उस भाव से दूध से श्रीगिरिराजजी को स्नान कराने में आता है। फिर जल से स्नान कराकर अंगवस्त्र कर, धोती उपरना, तिलक, पुष्पमाला धरकर, विविध सामग्री का भोग धराने मे आता हैं। श्री गिरिराजजी को कूनवारा और छप्पन भोग भी आरोगाया जाता है।

श्री गिरिराजजी के समग्र स्वरुप में श्रीअंग की भावना नीचे अनुसार करने में आती है-

मानसी गंगा नेत्ररुप हैं। चंद्र सरोवर नासिका रुप है। कृष्ण कुंड़ दाढ़ी रुप है। गोविंद कुंड अधर रुप हैं, राधा कुंड जीभ रुप है, ललिता कुंड़ कपोल रुप है, कुसुम सरोवर कर्ण प्रदेश है। गोप कुण्ड कर्ण रुप है। वाजनी शीला कंठ रुप है। चित्रनी शीला श्रीमस्तक रुप है। कंदूक तीर्थ कोखरुप है। चरिघाट कमर रुप है। द्रोणतीर्थ पीठ रुप है। कोकिला वन उदर रुप है। कदम खंडी हृदय रुप है। ऐरावत कुंड मनरुप है। गाय के चरण पक्ष रुप है। ऐरावत के चरण चरणरुप है। पूंछरी पूंछ रुप है। मुकुट का चिह्न मुकुट रुप है। सुन्दर शिला मुखारविंद रुप है।

वैष्णव लोग गिरिराजजी की अनेक प्रकार से परिक्रमा करते हैं। कई वैष्णव पाँच कोस की, कई सात कोस की और कोई नौ कोस की परिक्रमा करते हैं। कई वैष्णव दूधकी धारा के साथ परिक्रमा करते हैं और कितने ही दंडवती परिक्रमा करते हैं।

श्री गिरिराजजी में प्रभुकी अनेक लीलाओं के दर्शन होते हैं। जिस शिला में से सिन्दुर प्रकट करके प्रभुने श्रीस्वामिनीजी की मांग भरी, वह सिन्दुर शिला पर आज भी हाथ घिसने पर हाथ लाल हो जाते हैं। जिस स्थान पर माखन आरोगकर हाथ पोंछे वह शिला आज भी माखन जैसी चिकनी है।

उसमे उंगलियों के चिह्न हैं। कितनी ही शिलाओं पर केशरी घोड़ा के खुर, सुरभी गाय के चरण, और एरावत हाथी के चरण हैं। प्रभु के मुकुट और छडी के चिन्ह भी सदा ही सुन्दर दिखते हैं।

दंड़ोती शिला के पास एक वृक्ष और चौतरा है, वहां श्री महाप्रभुजी की निकुञ्ज लीला का द्वार है। मुखारविंद के दूसरी ओर दूसरा चोतरा और वृक्ष है वह श्रीगुसांईजी की निकुंज लीला का द्वार है। श्री गिरिराजजी में अष्टमहानुभाव भक्त कवियों के अष्ट द्वार आये हुए हैं। ऐसे गिरिराजजी का स्वरुप, उनकी लीला और उनकी भाव भावना का पूर्ण प्रेमसे चिंतन करना चाहिए। भगवदीयोंने श्रीगिरिराजजी के माहात्म्य के अनेक पद गाये हैं और सदा ही गिरिराजजी की तलेटी में रहने की अभिलाषा व्यक्त की है

गोवर्धन की रहिये तरैटी,
नित प्रति मदन गोपाल लालके चरन-कमल चित लहिये ।।
तन पुलकित व्रजरज में लोटत, गोविन्द कुंडमें नहिये ।
रसिक प्रीतम, हित-चितकी बतियाँ, श्री गिरिधारीजू सों कहिये ।।

* * *

४. पुष्टिमार्गीय साहित्य का परिचय

(१) श्री महाप्रभुजी का ग्रन्थ साहित्य :

श्री महाप्रभुजी आधिदैविक अग्निस्वरुप है, इससे वे श्री ठाकोरजी के मुखारविंद स्वरुप हैं। आप वाक्पति-वाणी के पति हैं। जिस प्रकार वेद परमात्मा के श्वासोच्छवास से प्रकट हुए हैं, उसी तरह श्री महाप्रभुजी की वाणी श्री वेदस्वरुप है।

आपश्री ने दो प्रकार के ग्रन्थो की रचना की है (१) स्वतंत्र ग्रन्थ (२) भाष्य टीका ग्रन्थ। इन ग्रन्थों में आपश्री ने अपने सिद्धान्तों को स्पष्ट रुप से लिखा है। आपश्री के महत्व पूर्ण ग्रन्थ निम्नानुसार है।

१ तत्वार्थदीप निबंध :

(१) तत्वार्थदीप निबंध - आपश्री का यह ग्रन्थ स्वतंत्र रुप से रचा गया है। इसमें तीन विभाग है (१) शास्त्रार्थ प्रकरण (२) सर्व निर्णय प्रकरण (३) भागवतार्थ प्रकरण। शास्त्रार्थ प्रकरण में गीताजी का तत्वज्ञान समझाया है। सर्व निर्णय प्रकरण में हिन्दू धर्म के विविध शास्त्रो के महत्व को समझाकर ईश्वर प्राप्ति के संबंध में भक्ति मार्ग का स्वरुप बताया है। भागवतार्थ प्रकरण में श्रीमद्भागवत के शास्त्र, स्कंध, प्रकरण और अध्याय ये चार प्रकार से अर्थ किये है।

यह पूरा ग्रन्थ कारिका के रुप में ही लिखा गया है। इससे अधिक स्पष्ट करने के लिए श्रीमहाप्रभुजीने इस ग्रन्थ पर 'प्रकाश'नाम की टीका लिखी है। इस ग्रन्थ पर निम्नानुसार दूसरी टीकाएँ हैं

१. आवरण भंग - गोस्वामी श्री पुरुषोत्तमजी
२. योजना - श्री लालु भट्टजी

३. सत स्नेह भाजन - (अपूर्ण)-पं.गट्टूलालजी
४. टिप्पणी - गोस्वामी श्री कल्याणरायजी

(२) अणुभाष्य :

श्री महाप्रभुजीने वेदादि शास्त्रों के अध्ययन से समझाया है कि उनसे पहले होगये श्रीशंकर, श्रीरामानुज आदि आचार्योने 'ब्रह्मसूत्र'के अर्थ को पूर्ण रुप से न्याय किया नहीं है। इससे उपनिषदों में बताये हुए ब्रह्मवाद को सच्चे स्वरुपमें समझाने के लिए श्री महाप्रभुजी ने 'ब्रह्मसूत्र' पर भाष्य की रचना की। इस भाष्य को 'अणुभाष्य' ऐसा नाम श्रीमहाप्रभुजी द्वारा दिया हुआ नही है। श्रीगुसांईजी ने तथा श्रीपुरुषोत्तमजी ने इस नाम का उल्लेख किया नहीं। इस भाष्य पर 'विवरण' नाम की आपकी टीका में गोस्वामी गिरधरजीने पहली बार इस भाष्य के लिए 'अणुभाष्य' शब्द का प्रयोग किया हैं।

'अणुभाष्य'के लिए दो स्पष्टीकरण किये गये

(१) श्रीमहाप्रभुजीने 'ब्रह्मसूत्र'पर दो टीकाएँ लिखी है। बडी टीका और छोटी टीका। अणुभाष्य अर्थात् छोटी टीका

(२) जीव ब्रह्म का अंश है - यह सिद्धान्त श्री महाप्रभुजी ने इस ग्रन्थमें बताया होने से अणुभाष्य कहलाता है। परंतु वस्तु स्थिति को देखने पर इस भाष्य में सूत्रार्थ का संक्षेप में निर्देश किया गया होने से इस का नाम अणुभाष्य रखा गया होना चाहिए।

इस गन्थ में सूत्र ३-२-३ तक श्रीवल्लभ की रचना है। शेष भाग श्रीगुसांईजीने पूरा किया हैं। इस ग्रन्थ पर अनेक गोस्वामी बालको और विद्वानो की मिलाकर चौदह टीकाएँ हैं।

(३) श्री सुबोधिनीजी :

श्री सुबोधिनीजी यह श्रीमद्भागवत की टीका है। श्रीमद्भागवत के पहला, दूसरा, तीसरा और दसवाँ और ग्यारवे (अधूरा) स्कंध पर के

सुबोधिनीजी आज उपलब्ध है। इस ग्रन्थ में श्रीमहाप्रभुजी प्रत्येक श्लोक का, शब्दका और अक्षर का अर्थ बहुत ही सूक्ष्मरीति से समझाते हैं, भागवत के गूढ अर्थ को प्रकट करते हैं। श्रीमद्भगवत पर बहुत सी टीकाएँ लिखी गई है। उन सब में सुबोधिनी श्रेष्ठ है।

इस ग्रन्थ में आपश्रीने अन्य टीकाकारों के सिद्धान्तो के साथ अपने सिद्धान्तो की तुलना की हे। दसवें स्कंध में भगवद्लीला का वर्णन करते, स्वयं को हुए अनुभवों के भाव भी पूरे के पूरे प्रेम से वर्णन करते हो ऐसा लगता है।

इस ग्रन्थ पर निम्न टीकाएँ है
१. टिप्पणी - श्रीगुसांईजी
२. लेख - गो. श्रीवल्लभजी
३. प्रकाश - गो. श्रीपुरुषोत्तमजी
४. योजना - श्रीलालु भट्टजी
५. कारिका - श्री निर्भयराम भट्ट

(४) पत्रावलम्बन :

जब श्री महाप्रभुजी अेकान्त स्थान में बिराजकर ग्रन्थ लेखन करते तब काशी के बहुत से पंडित शास्त्रार्थ करने आते, इसमें आपका बहुत समय नष्ट होता। उन सारे पंडितो को उत्तर दने के लिये एक पत्र में उनके सिद्धान्तों की चर्चा कर अपने सिद्धान्तों को स्पष्ट किया है। यह पत्र काशी के विश्वनाथ महादेव मन्दिर के द्वार पर चिपकाने में आया था। उसमें साढ़े उनचालिस श्लोक हैं। शेष गद्य रचना है।

इस ग्रंथ पर गोस्वामी श्रीपुरुषोत्तमजी, श्रीहरिरायजी, श्रीगिरिधरजी और श्रीबालकृष्णजीकी टीकाओ हैं।

(५) जैमिनि सूत्र भाष्य :

पूर्व मिमांसा के सिद्धान्त पर जैमिनि मुनिने रचा हुआ 'जैमिनि सूत्र'नाम के ग्रन्थ पर श्री महाप्रभुजी ने टीका लिखी है।

इस ग्रन्थ में श्री महाप्रभुजीने जैमिनि मुनि के विचारों में रही खामियाँ बताई है। सूत्रों का सच्चा अर्थ ठीक किया है। इसमें भावार्थ पाद तक की टीका है। ग्रन्थ अपूर्ण है।

षोडश ग्रन्थ :

अपने सेवको के प्रश्नों के उत्तर के रुप में रचे हुए सोलह छोटे ग्रन्थों का यह समूह है। प्रत्येक ग्रन्थ पर गोस्वामी बालको और विद्वानों की बहुतसी टीकाएँ है। 'षोडश ग्रन्थ' में नीचे के सोलह ग्रन्थों का समावेश होता है

(१) **श्री यमुनाष्टक :** श्रीयमुनाजी के स्वरुप, गुण और महात्म्य का निरुपण करने मे आया है। इसमें नौ श्लोक है।

(२) **बालबोध :** इस ग्रन्थ में उन्नीस श्लोक है। तत्वज्ञान के क्षेत्रमें प्रारंभ करते मनुष्यों को प्रभु प्राप्ति के अन्य मार्गो की तुलना व इस मार्ग की उत्तमता इस ग्रन्थ में बताई गई है।

(३) **सिद्धान्त - मुक्तावली :** इस ग्रन्थ में इक्कीस श्लोक है, जिनमें पुष्टिमार्ग के महत्व के मूल सिद्धान्त हैं। उसमें प्रभुका स्वरुप, सेवा और उसके प्रकार तथा प्रेम द्वारा प्रभु की प्राप्ति की बात बताई है।

(४) **पुष्टि प्रवाह मर्यादा :** यह ग्रन्थ अपूर्ण है। इसमें पच्चीस श्लोक है। जीव के तीन प्रकारो का विगतवार वर्णन है।

(५) **सिद्धान्त रहस्य :** ब्रह्मसंबंध की आज्ञा किस तरह हुई? ब्रह्म संबंध के बाद अपना जीवन कैसा हो? ये इस ग्रन्थ के आठ श्लोको में बताया हैं।

(६) **नवरत्न :** नवरत्नों जैसे नौ श्लोको में चिन्ता न करने के लिए बोध किया है। चिन्ता दूर करने का उपाय बताया है।

(७) **अन्तःकरण प्रबोध :** दश श्लोको में श्रीमहाप्रभुजी अपने मन को संबोधन करके ईश्वर इच्छा को हमेशा मान देने की आज्ञा करते है।

(८) **विवेकधैर्याश्रय** : इसमें सत्र श्लोक हैं, विवेक, धैर्य और आश्रय के स्वरुप का इस ग्रन्थ में वर्णन किया है।

(९) **चतुःश्लोकी** : चार श्लोको के इस छोटे से ग्रन्थमें पुष्टिमार्गीय पुरुषार्थ धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष का वर्णन है।

(१०) **कृष्णाश्रय** : इस ग्रन्थ में ग्यारह श्लोक हैं। श्रीकृष्ण का ही आश्रय रखने के लिए इस ग्रन्थ में आज्ञा की है।

(११) **भक्तिवर्धिनी** : भक्ति बढ़ाने के उपाय और भक्ति के तीन स्वरुपों को इस ग्रन्थ में बताया है।

(१२) **पंचपद्यानि** : पाँच श्लोकों के इस छोटे से ग्रन्थ में श्रोताओं के लक्षण बताये हैं।

(१३) **जलभेद** : बीस प्रकार के जल के, साथ विविध प्रकार के व्यक्तियों की तुलना की है।

(१४) **संन्यासनिर्णय** : बाईस श्लोकों मे भक्तिमार्गीय संन्यास का स्वरुप समझाया है।

(१५) **निरोधलक्षण** : वीस श्लोको में निरोध का स्वरुप और निरोध सिद्धि का मार्ग बताया है।

(१६) **सेवाफल** : नौ श्लोको में सेवा के तीन फल और सेवामें आनेवाले तीन प्रकार के प्रतिबंधो को बताया है, इस ग्रन्थ पर श्री महाप्रभुजीने स्वयं सेवाफल विवरण नामकी टीका लिखी है।

इसके अतिरिक्त श्री महाप्रभुजी रचित नीचे के ग्रन्थ भी मिलते है।

१. **शिक्षाश्लोकी** : भूतल त्याग के पूर्व अपने परिवार और वैष्णवों को अंतिम आज्ञा देने वाला यह ग्रन्थ है।

२. **मधुराष्टक** : श्री ठाकुरजी के दिव्य स्वरुप का वर्णन है।

३. **श्रीगिरीराजधार्याष्टकम्** : श्रीठाकुरजी की लीलाओ का सुन्दर वर्णन हैं।

४. **पंचश्लोकी** : वैष्णव जीवन जीने का सही एवं अच्छा मार्ग इस ग्रन्थ में बताया है।

श्रीगुसांईजी का ग्रन्थ साहित्य :

(१) श्रीगुसांईजी ने श्रीमहाप्रभुजी द्वारा आधे रखे ग्रन्थ 'अणुभाष्य' को पूरा किया।

(२) **विद्वन्मंडन** : यह ग्रन्थ बहुत ही विद्वत्ता से भरा हुआ है। इसमे शंकर के मत का खण्डनकर उपनिषदों के तत्वज्ञान को सही रुप में प्रस्तुत करने में आया है। इस ग्रन्थ में पूर्व पक्ष श्रीगुसांईजी के प्रथम पुत्र श्रीगिरधरजी ने किया है। यह ग्रन्थ समझना बहुत कठीन है। इस पर नीचे जैसी चार टीकाएँ है -

१. 'सुवर्ण सूत्र' - गोस्वामी पुरुषोत्तमजी
२. 'हरितोषिणी' - गोस्वामी गिरधरजी
३. टिप्पणी - श्रीगंगाधर भट्ट
४. सिद्धान्त शोभा.

(३) **'भक्ति हेतु निर्णय'** : भक्ति हेतु निर्णय ग्रन्थ में श्रीगुसांईजी ने पुष्टि भक्ति का स्वरुप अनेक प्रमाणो के साथ, सुन्दर तरीके से बताया है। भक्ति का मुख्य हेतु क्या हो? उसका विशद वर्णन किया है।

(४) **भक्ति हंस** : भक्ति हंस ग्रन्थमें प्रेमलक्षणा भक्ति का सुन्दर तरीके से निरुपण करने में आया है।

(५) **विविध स्तोत्र** : श्रीगुसांईजीने नीचे जैसे विविध स्तोत्रों की रचना की है। आप की भाषा बहुत ही कवित्त्वमय और ललित है।

१. **श्री सर्वोत्तम स्तोत्र** : इसमें श्रीमहाप्रभुजी के एक सो आठ नामों का वर्णन है।

२. **'श्री स्फूरत कृष्ण प्रेमामृत स्तोत्र'** : स्तोत्र को सप्तश्लोकी कहनेमें आता है, इसमें श्रीमहाप्रभुजी के गुणों का सुन्दर वर्णन है।

३. **वल्लभाष्टक** : इस स्तोत्र में महाप्रभुजी के अलौकिक स्वरुप का वर्णन है।

४. **'श्री स्वामिनी प्रार्थना चतुष्टयी'** : श्री स्वामिनीजी की स्तुति के चार स्तोत्र बहुत सुन्दर हैं।

५. मंगला, राजभोग, संध्या और शयन आरती के कीर्तनों तथा **पलना** के सुन्दर कीर्तन आपने संस्कृत भाषामें रचे हैं।

६. **'श्रृंगार रस मंडन'** : ब्रजभक्तो की प्रभु के साथ अलौकिक लीलाओं का निरुपण स्वरुप का यह अलौकिक रसमय, ग्रन्थ है। इसमें 'वृतचर्या''दानलीला और दस उल्लास' नाम के तीन प्रकरणों में अति सुन्दर भगवद् लीला का वर्णन है।

७. **'टीका ग्रन्थो'** : श्रीगुसांईजी ने श्रीमहाप्रभुजी के षोडश ग्रन्थो में से 'श्रीयमुनाष्टक', सिद्धान्त मुक्तावली, नवरत्न, इत्यादि ग्रन्थो पर सुन्दर टीकाएँ रची है। तदुपरान्त 'श्रीकृष्ण प्रेमामृत' ग्रन्थ पर भी आपने टीका लिखी है।

(३) श्री गोकुलनाथजी का ग्रन्थ साहित्य :

श्रीगोकुलनाथजीने 'गद्यमंत्र' की टीका की है। इसके बाद षोड़शग्रन्थ के अन्तर्गत कई ग्रन्थों पर और श्रीगुसांईजी के ग्रन्थो पर टीका की रचना की है।

श्रीगोकुलनाथजी ने वृजभाषा में 'चौर्यासी और दोसो बावन वैष्णवों की वार्ताएँ, निजवार्ता, धरुवार्ता, बैठक चरित्र, भावसिंधु इत्यादि ग्रन्थो की रचना की है। इसके बाद 'नित्य सेवा प्रकार' और 'सेवा की भावना' विषयों के रचे हुए आपके ग्रन्थ हैं। श्रीगोकुलनाथजी के वचनामृत का बहुत बड़ा समूह ग्रन्थ स्वरुप में विद्यमान हैं।

श्री हरिरायजी का ग्रन्थ साहित्य :

(१) **'ब्रह्मवाद'** : शुद्धाद्वैत ब्रह्मवाद का स्वरुप समझाया है।

(२) **'भक्ति द्वैविध्य निरुपण'** : चरणारविंद की भक्ति और मुखारविंद की भक्ति का वर्णन हैं। 'मुक्ति द्वैविध्यनिरुपण' साधन मुक्ति और साध्य मुक्ति का वर्णन है। ऐसे पुष्टिमार्गीय सिद्धान्त समझाते, सरल भाषा में छोटे छोटे बहुत से ग्रन्थों का संग्रह **'श्रीहरिराय वाङ्ग मुक्तावली भाग-१** और **भाग-२** में संगठित है।'

(३) **शिक्षापत्रा** : एकतालीस शिक्षापत्रों में संप्रदाय के सिद्धान्तो को अच्छी तरह समझाया है। इन शिक्षा पत्रों पर आपके छोटे भाई श्रीगोपेश्वरजीने ब्रजभाषा में टीका लिखी है। 'शिक्षापत्र' घर घर में प्रतिदिन भगवद्वार्ता के क्रम में अवश्य पढ़े जाते है।

(४) **भावप्रकाश** : चोर्यासी और दोसो बावन वैष्णवों की वार्ता के रहस्यों को समझाने के लिए आपने 'भावप्रकाश' नाम की टीका लिखी है। 'सुबोधिनीजी' पर आपके स्वतंत्र लेख विद्यमान है। तदुपरान्त 'श्रीनाथजी स्वरुप भावना' **'श्रीनाथजी प्राकट्य वार्ता'** इत्यादि अनेक ग्रन्थ व्रजभाषा गद्य में लिखे हैं। 'रसिक हरिदास' इत्यादि छाप से ब्रजभाषा में सुन्दर कीर्तनो की रचना की है। गुजराती, मारवाड़ी, और पंजाबी में आपका पद साहित्य है।

(५) गोस्वामी श्रीपुरुषोत्तमजी का ग्रन्थ साहित्य :

(१) प्रस्थान रत्नाकर

(२) वादावलि

(३) 'सुबोधिनीजी' और अणुभाष्य' पर टीका

(४) 'षोडशग्रन्थ' पर टीका

इस तरह श्री पुरुषोत्तमजी का ग्रन्थ साहित्य विपुल है।

(१) अन्य ग्रन्थ साहित्य :

पुष्टिमार्गीय ग्रन्थ साहित्य में गोस्वामी श्री गिरधरजी का 'शुद्धाद्वैत-मार्तण्ड' श्रीलालुभट्टजी का 'प्रमेय रत्नार्णव' श्रीगट्टूलालजी का 'वेदान्त चिन्तामणी' श्रीगोपालदास भाई का 'वल्लभाख्यान,' श्री दयारामभाई के बहुत प्रमाण में पद साहित्य, 'रसिक वल्लभ' 'सतसैया,' 'भक्तिपोषण' और अन्य महानुभाव विद्वानोके अनेक ग्रंथ और टीकाग्रंथ आज विद्यमान है। ये सर्व साहित्य पुष्टिमार्ग के सिद्धान्तों को समझानेका में बहुत सरल व सुन्दर कार्य करता है।

* * *

५. शुद्धाद्वैत ब्रह्मवाद

वेद, ब्रह्मसूत्र, गीता, और भागवत् के अर्थों का सही प्रकाश श्रीमहाप्रभुजी ने प्रगट किया है। इन चारों प्रमाणों के समन्वय रुप में आपने प्रस्तुत किया सिद्धान्त 'शुद्धाद्वैत ब्रह्मवाद'के नाम से प्रसिद्ध हैं।

सारे हिन्दु आचार्यो अपने मत के लिए 'ब्रह्मवाद' शब्द का प्रयोग करते है। परंतु प्रत्येक आचार्य परमात्मा के संबंध में अलग अलग द्रष्टिकोण रखते हैं। इससे उनके स्वतंत्र विचार को समझने के लिए, उनके द्वारा प्रयुक्त 'ब्रह्मवाद' विशेषण अधिक महत्व का है। ऐसे ही 'शुद्धाद्वैत ब्रह्मवाद' में शुद्धाद्वैत अधिक महत्व का है।

१. 'शुद्धाद्वैत' शब्द का अर्थ :-

'शुद्धाद्वैत' शब्द दो शब्दों से बना है - शुद्ध+अद्वैत अर्थात् जिसमें अलग होना न हो वह. ब्रह्म, जगत और जीव इन तीनों का एक ही स्वरुप है। इनके मध्यमें किसी प्रकार का अन्तर नहीं है। लेकिन माया नाम की शक्ति के कारण ब्रह्म, जीव और जगत अलग अलग लगते हैं। ब्रह्म शुद्ध है। ब्रह्म में से ही जीव और जगत उत्पन्न हुए हैं। इससे इनका अद्वैत शुद्ध है, इसलिए यह सिद्धान्त शुद्धाद्वैत कहलाता है।

परमात्मा जगत की उत्पत्ति का कारण है। जगत परमात्मा का कार्य स्वरुप है। परमात्मा से जगत अलग नहीं है। ब्रह्म भी शुद्ध है और जगत भी शुद्ध है। ये दोनों शुद्ध तत्व एक ही है। इनका अद्वैत है इसलिए यह सिद्धान्त 'शुद्धाद्वैत' कहलाता है।

श्रीमहाप्रभुजी ने 'शुद्धाद्वैत ब्रह्मवाद' के सिद्धान्त के द्वारा यह सिखाया हे कि 'ब्रह्म' अर्थात् भगवान शुद्ध है। उन्हें जगत उत्पन्न करने की इच्छा

हुई, इससे स्वयं के सत् और चित् अंश मे से उन्हें अलग अलग रुप और नाम प्रकट कर जगत की रचना की। इसतरह, पूरे जगत में जड़ और चेतन पदार्थो में परमात्मा अंश रुप में रहे हुए है। इससे ये सब अलग अलग नाम और रुप ईश्वर के ही हैं। जगत के सारे पदार्थो में ऐसा ईश्वर भाव व्यवस्थित रखना चाहिए।

इसलिए सबके प्रति दया, प्रेम और सन्मान की भावना प्रकट करना चाहिए। अन्य के साथ अपना व्यवहार सौम्य और मीठा बनाना चाहिए। जगत के सारे पदार्थो में और सारी क्रियाओं में अच्छा देखना, अच्छा ढूढ़ना, अच्छा सुनना, और अच्छा बोलनें की वृत्ति और प्रकृति बनाना चाहिए।

(२) शुद्धाद्वैत ब्रह्मवाद का मुख्य सिद्धान्त :

श्रीमहाप्रभुजी के सिद्धान्त की मुख्य नींव की बाबत नीचे अनुसार है

(१) सारे आचार्यो की तरह आपश्री भी ब्रह्म सत्य है, ऐसा मानते हैं।

(२) अन्य आचार्य जगत को माया से बना हुआ मानते हैं, इससे उसे मिथ्या मानते हैं। परंतु श्रीमहाप्रभुजी जगत को ईश्वर का स्वरुप मानते हैं। इससे जगत को सत्य मानते हैं।

(३) अन्य आचार्य जीव और ब्रह्म को एक मानते हैं। श्रीमहाप्रभुजी के मतानुसार जीव ईश्वर रुप नहीं है, लेकिन ईश्वर का एक अंश है। जीव में सद् और चिद् अंश है। आनंद अंश का तिरोधान है।

(४) 'यह मैं करता हूँ।' इसका नाम अहंता, 'यह मेरा है।' इसका नाम ममता। अहंता और ममता अर्थात् संसार। ऐसा संसार मिथ्या है। जगत में जीव कुछ कर नहीं सकता, सब प्रभुकी ईच्छा से ही होता है। जीव का अपना कुछ नहीं है। सारा भगवान का है।

(५) ब्रह्म में सत् (जडत्व), चित (चेतन) और आनंद रहता है।

(६) जीव ब्रह्म में से (बिछडा हुआ) अलग हुआ है।

(७) माया भगवान की शक्ति है। माया के आवरण के कारण अपन जगत के चेतन पदार्थो मे बिराजे हुओ, भगवद् स्वरुप के दर्शन कर नहीं सकते।

(३) ब्रह्म का स्वरुप :

अलग अलग शास्त्र ब्रह्म को ब्रह्म, परमात्मा, ईश्वर, भगवान - ऐसे अलग अलग नामों से जानते हैं। ब्रह्म में तीन मूल तत्व है सत्-चित् और आनंद. ये तीन तत्व ब्रह्म के धर्म स्वरुप हैं। इसमें आनंद तत्व सबसे महत्व का है। जगत् में सत् और चित् तत्व के दर्शन होते है परन्तु आनंद तत्व देखने को मिलता नहीं है।

ब्रह्म का आनंदस्वरुप पूर्ण है, इससे ब्रह्म सदानंद, पूर्णानंद, और परमानंद कहलाता है। इसके आनंद तत्व में कभी बढ़ोतरी या कमी होती नहीं है। दुनिया का आनंद क्षणिक है, वह विषयानंद है। ब्रह्म का आनंद स्थायी है, वह भजनानंद है। ब्रह्म का स्वरुप आनंदमय रसरुप है।

ब्रह्म में मनुष्य की तरह रक्त, मांसपूर्ण आकार नही है, इस अर्थ में ब्रह्म निराकार है। परंतु ब्रह्म के सारे अंग आनंदमय है, उस अर्थ में ब्रह्म साकार है। ब्रह्म सत्य है। ब्रह्म सर्वव्यापी है। अपनी ईच्छा के अनुसार रुप धारण करने में सर्व शक्तिमान है। वे स्वतंत्र हैं। वे सर्वज्ञ है। दुनिया के लौकिक गुण उनमें नहीं है, इससे वे निर्गुण भी हैं।

ऐसे ब्रह्म स्वरुप को जीव अपनी शक्ति से पा नहीं सकता। ब्रह्मको साधनों के द्वारा प्राप्त नहीं कर सकते। परंतु भगवान जब जीव पर कृपा करता है तो उसे उनकी प्राप्ति हो जाती है। इसलिए भगवान को प्राप्त करने का मार्ग प्रेमलक्षणा भक्ति है। प्रभु के स्वरुप को जानकर प्रभु के प्रति सबसे अधिक स्नेह करें, उसका नाम है प्रेमलक्षणा भक्ति। इसलिए महाप्रभुजीने भगवद् सेवा द्वारा पूर्णानंद की प्राप्ति का सुन्दर और सरल मार्ग बताया है।

(४) अक्षर ब्रह्म का स्वरुप :

प्रत्येक वस्तु के तीन रुप हैं - आधिदैविक, आधिभौतिक और आध्यात्मिक. अक्षर ब्रह्म ये ब्रह्म का आध्यात्मिक स्वरुप है। ब्रह्म का आधार स्थान है। ब्रह्म आनंदरुप, रस स्वरुप है। रस पात्र के बिना नहीं रह सकता है। ब्रह्मरुपी रस का पात्र अक्षर ब्रह्म है। एक प्राणी से उसकी पूँछ अलग नहीं होती, उसी पर प्रकार, ब्रह्म से अक्षर ब्रह्म अलग नहीं है। शास्त्रों में उसे 'व्यापी वैकुण्ठ' अथवा 'गोलोकधाम' कहाँ है।

भगवान को प्राप्त करने के मुख्य तीन मार्ग है। भक्ति, ज्ञान और कर्म। ज्ञान के द्वारा जीव को मोक्ष मिलता है। मोक्ष मिलते ही जीव अक्षर ब्रह्म को प्राप्त होता है। अक्षर ब्रह्म के चार प्रकट स्वरुप है (१) अक्षरस्वरुप, (२) कालस्वरुप, (३) कर्मस्वरुप (४) स्वभाव स्वरुप।

ये चारो स्वरुप भगवान के आधार भाग रुप चरणारविन्द के ही स्वरुप हैं। उनके द्वारा भगवान जीवों को मोक्ष देते हैं। मोक्ष अर्थात् अक्षर ब्रह्म में जीव तत्व का समा जाना। जिससे जीव मरण के फेरे में से हमेशा के लिए मुक्त हो जाता है लेकिन उसे पूर्णानंद का अनुभव होता नहीं है। अक्षर ब्रह्म का आनंद इतना है कि उसे गिन सकतें है। इसी से वह गणितानंद है। इसमें सब अंश की अधिकता है। ज्ञानियों को अक्षर ब्रह्म महान फलरुप लगता है। ज्ञानी जब समाधि लेता है तब उसके अन्तर चक्षु के समक्ष यह अक्षर ब्रह्म ही अन्तर्यामी स्वरुप से प्रकट होता है। ज्ञानीकी गति ब्रह्म केआधिदैविक परमानन्द स्वरुप तक नहीं है। इसलिए भक्त मोक्ष प्राप्ति की इच्छा रखते नहीं है, वे तो ब्रह्म के आधिदैविक स्वरुप को आतुरता से रटते हैं।

(५) जगत का स्वरुप :

जगत ब्रह्म का आधिभौतिक स्वरुप है, प्रभु ने अपनी क्रीड़ा के लिए अपने सत् अंशमे से जगत की रचना की है। जगत भगवान से अलग नहीं है। इसलिए जगत सत्य है।

(६) संसार का स्वरुप :

'यह मैं करता हूँ।' 'यह मेरा है।' ऐसा मानता वह अहंता- ममता है। अहंता ममताका दूसरा नाम संसार है। ऐसा संसार मिथ्या है। कारण कि भगवान पूरे जगत का संचालन करते हैं। जगत के मालिक भी वे ही हैं। जीव के पास स्वतंत्र रुप से काम करने की शक्ति नहीं है। व उसके मालिकी की वस्तु भी नहीं है। अविद्या के लिए जीव अहंता-ममता में फँस जाता है, संसार को सत्य मानने की भूल करता है। परिणाम स्वरुप वे दुखी होते हैं। जीव की अविद्या के लिए पाँच बाते जिम्मेदर हैं (१) देहाध्यास (२) प्राणाध्यास (३) इन्द्रियाध्यास (४) अन्त:करणाध्यास (५) स्वयं के मूल स्वरुप का अज्ञान। जब जीव प्रभु की शरण में जाकर उनका दास बनता है, तब उसकी अहंता-ममता नाश होती है। दास भाव से दीनता का सच्चा ज्ञान होने से उसके पाँचो ही अविद्या के कारण दूर हो जाते हैं। अहंता ममता से मुक्त होने का सरल उपाय हे आत्म निवेदन। जीव दीन भाव से अपना कहलाने वाला सब प्रभु को समर्पण कर, उनका दास बनकर रहे। वह इस सम्पत्ति का स्वामी नहीं है लेकिन ट्रस्टी है ऐसा माने, अपनी सारी प्रवृत्ति प्रभु के सुख के लिए है। ऐसा स्वीकार कर, सारा व्यवहार करता है तो वह आसक्ति रुपी दु:ख मे से छूटकर आनंद रुप प्रभु से जुड़ जाता है।

(७) जीव का स्वरुप :

ब्रह्म एक थे, उन्हें 'मैं अनेक होऊं' ऐसी इच्छा की, जिससे स्वयं के चित् अंश मे से जीव सृष्टि की रचना की। जिस प्रकार अग्नि में से एक साथ असंख्य तिनके निकलते है उसी प्रकार ब्रह्म में से सूक्ष्म चिह्न अंश की प्रधानता वाले और आनंद अंश तिरोहित हुए असंख्य जीवों का आविर्भाव हुआ। इस तरह जीव में ब्रह्म का सत् और चित् अंश है। छोटे से छोटे जंतु से लेकर बड़े प्राणी सब में जीव रहता है, उनका कद एक सरीखा है। वे सूक्ष्म से भी सूक्ष्म हैं।

जीव नित्य है, उसका कभी नाश होता नहीं। जन्म मरण यह शरीर का धर्म हैं। जीव का धर्म नही है। जीव में से आनंद अंश तिरोहित होते ही उसमें दीनता, पराधीनता और हीनता आजाती है। उसे दुःख सहन करने का आया, जन्म मरण की आपत्तियाँ आई, विषयाशक्ति आई, अहंकार बुद्धि और विपरित ज्ञान आया। ऐसे जीव स्वभाव से दोषवाला बना। जीव एक सरिखा दीखता है फिरभी देह, क्रिया, सर्ग और फल में अन्तर है। श्रीमहाप्रभुजी ने जीव सृष्टि के तीन मुख्य भेद बताये- पुष्टि, मर्यादा और प्रवाही। उनके जीवन जिने के भी तीन मार्ग है लेकिन अलग अलग है। (१) पुष्टिमार्ग (२) मर्यादामार्ग (३) प्रवाही मार्ग। पुष्टि जीव भगवान के श्रीअंग में से उत्पन्न हुए हैं। प्रभुकी कृपा को प्राप्त किया है। उनका मन और शरीर प्रभुकी सेवा के अनुकूल है। उनको प्रभु के स्वरुपानंद की प्राप्ति का फल मिलता है। मर्यादा जीव निष्काम तरीके से वैदिक कर्म करते हैं तो अक्षर ब्रह्म को प्राप्त करते हैं। सकाम कर्म करता है तो स्वर्ग की प्राप्ति करता है। प्रवाही जीव अपने सुख और भोग में डूबे रहते हैं। वे जन्म मरण की घटमालमे फिरते रहते हैं। उनके दो प्रकार है। अज्ञ जीव - जो सत्संग से सुधर सकते हैं। दुर्ज्ञ - जीव वे आसुरी स्वभाव के होते हैं। हमेशा अधर्म करते हैं। चित्त अस्थिर होता है, भगवान का द्वेष करते हैं। उनकी गति केवल यम के आधीन है।

इस तरह शुद्धाद्वैत ब्रह्मवाद के द्वारा श्री महाप्रभुजी ने ब्रह्म, जगत, जीव और संसार के स्वरुप को बताकर, अपने पुष्टि जीवों के लिए भगवद् प्राप्ति का सरल कृपामार्ग - पुष्टिमार्ग बताया है।

* * *

६. पुष्टिमार्ग के सिद्धान्त

१. भक्तिमार्ग

‘भक्ति’शब्द भज धातु को ‘कितन्’ प्रत्यय लगाने से बना है। ‘भज’ धातु का अर्थ सेवा करना, ऐसा होता है। ‘कितन्’ प्रत्यय प्रेम सूचक है, इसलिए ‘भक्ति’ शब्द का अर्थ ‘प्रेम पूर्वक की सेवा’ ऐसा होता है। भगवान की प्रेम पूर्वक की सेवा करने का अधिकार स्त्री शूद्रो, सहित सब कोई को है। इसलिए विशेष शक्ति, साधनो, परिस्थिति, द्रव्य, समय इत्यादि की आवश्यकता नहीं है। भक्त अपनी भक्ति से भगवान को प्रसन्न कर भगवान को प्राप्त कर सकता है।

भक्ति मार्ग के दो मुख्य प्रकार है- सगुण भक्तिमार्ग और निर्गुण भक्ति मार्ग। सगुण भक्ति मार्ग में भगवान के विविध विभूति अंश, कला स्वरुपो- जैसे कि श्री नृसिंहजी, रामचन्द्रजी, शिवजी, गणेश, सूर्य इत्यादि देवी-देवताओ की उपासना की जाती है। ऐसी भक्ति ज्ञान युक्त होने से उसे ‘शास्त्रीय भक्ति’ अथवा मर्यादा भक्ति भी कहते हैं। इससे लौकिक फल अथवा मोक्ष मिलता है। यह भक्ति उत्तम प्रकार की नहीं है, कारण की उसके द्वारा साक्षात् भगवान रुपी संपूर्ण फल की प्राप्ति होती नहीं है। मोटे तौर पर लौकिक फल की इच्छा से, ऐसा भक्त पूजा उपासना करता है।

निर्गुण भक्ति मार्ग वैदिक मर्यादा स्वीकारता है। फिरभी उससे बंधा हुआ नही है। इसीसे उसे स्वतंत्र अथवा पृथक भक्ति मार्ग कहते हैं। इसमें सेव्य केवल पूर्ण पुरुषोत्तम श्रीकृष्णचन्द्र ही हैं। इस मार्ग में लौकिक फल प्राप्त करने की कोई भावना होती नही है। मोक्षकी भी इच्छा होती नहीं है। मर्यादा रीति की पूजा विधि के बदले भगवद्सेवा करने में आती है। प्रभु के प्रति निस्वार्थ स्नेह मुख्य होता है। स्नेह होने के बाद ज्ञान की आवश्यकाता होती

नहीं है। प्रभु से स्नेह के लिए कोई साधन की आवश्यकता नहीं है। नवधा भक्ति यहाँ प्रेमरुप है। साधन रुप नहीं। इससे यह मार्ग 'प्रेमलक्षणा' भक्ति का मार्ग कहलाता है। इस मार्ग में प्रभु के प्रति अनन्यता और दीनता आवश्यक है। भगवद् सुख यही जीव का सुख है। ऐसा भक्त मानता है। ऐसे निर्गुण भक्ति मार्ग को श्रीमहाप्रभुजी ने प्रकट किया। जिसे 'पुष्टिमार्ग' ऐसा नाम दिया है।

२. पुष्टिमार्ग

'पुष्टि' शब्द का सामान्य अर्थ पोषण होता है। प्रथम द्रष्टि में पौष्टिक पदार्थ खाकर हृष्ट-पुष्ट शरीरवालो का यह मार्ग होगा ऐसा लगता है। परंतु आचार और विचार इन दोनों द्रष्टि से ऐसा विचार ठीक नहीं।

श्री महाप्रभुजी 'पुष्टि'शब्द की व्याख्या करते आज्ञा करते हैं कि, 'पुष्टि अर्थात पोषण' पोषण का अर्थ है अनुग्रह-भगवान की कृपा। भगवान की कृपा प्राप्त करने का मार्ग वह 'पुष्टिमार्ग'। शरीर की हृष्ट-पुष्टता के साथ इस मार्ग का कोई संबंध नहीं है। हृदय में भक्ति के बीज को द्रढ करने का प्रथम उपाय त्याग है, जिससे श्रीमहाप्रभुजी आज्ञा करते हैं कि, 'इन्द्रियों रुपी अश्वों को नियंत्रण में रखना चाहिए कारण कि विषयासक्त शरीर में कभी प्रभु पधारते नहीं। इसलिए यह मार्ग प्रभु प्राप्ति के लिए विरह ताप-क्लेश का मार्ग है। महाप्रसाद खाकर शरीर को पुष्ट करने का मार्ग नहीं है।'

शास्त्रों में स्पष्ट आज्ञा है कि, 'परमात्मा कोई भी साधन करने से मिलता नहीं है लेकिन प्रभु जिस जीव पर कृपा करते हैं उसे अवश्य प्राप्त होते हैं। प्रभु जीव की शक्ति या कार्यो का विचार करते नहीं, प्रभु अपनी कृपा किसी जीव पर बरसाने के लिए स्वतंत्र है। उन्हें किसी शर्त या नियम से बांध सकते नहीं।'

इस प्रकार पुष्टिमार्ग भगवद् कृपा का मार्ग है। श्री महाप्रभुजी की आज्ञा है कि 'यह मार्ग निःसाधन भक्ति का मार्ग है। जीव का ज्ञान, सामर्थ्य, धन इत्यादि प्रभुको रिझा सकते नहीं है। प्रभु केवल जीवकी दीनता और निःस्वार्थ प्रेम से ही प्रसन्न होते है।'

जिसमें गुरु परंपरा द्वारा शरण मंत्र की प्राप्ति होती है उसे 'मार्ग' अथवा 'संप्रदाय' कहने में आता है। पुष्टि मार्ग में प्रभु की आज्ञा के अनुसार श्रीवल्लभकुल द्वारा जीव को अष्टाक्षर मंत्र और ब्रह्म संबंध मंत्र की प्राप्ति होते उसके लिए भगवद् कृपा के द्वार खुल जाते हैं, इसलिए इस मार्ग को 'पुष्टिमार्ग' कहने में आता है।

३. ब्रह्मसंबंध

आपने प्रथम प्रकरण में श्रीमहाप्रभुजी के चरित्र मे देखा है कि श्रावण सुदी एकादशी की रात्री में प्रभु ने प्रकट होकर श्रीमहाप्रभुजी को ब्रह्मसंबंध की आज्ञा की थी। ब्रह्मसंबंध मंत्र दिया था।

यह मंत्र संस्कृत भाषा में है। वह स्वयं प्रभुने दिया हुआ मंत्र है। साम्प्रदायिक परंपरा के अनुसार श्री वल्लभकुल के बालक द्वारा इसे ले सकते हैं। इसका उच्चारण अपरस में ही करना चाहिए।

यह मंत्र गद्य में होने से इसें 'गद्य मंत्र' भी कहते हैं। इसके द्वारा ब्रह्म अर्थात् प्रभु के साथ संबंध जुडता होने से इसका दूसरा नाम ब्रह्मसंबंध है। इसके द्वारा जीव अपना कहलाने वाला सब कुछ प्रभु को समर्पण करता है। इसलिए इसे निवेदन मंत्र भी कहते है। इस मंत्रमें चोर्यासी अक्षर है। इसके पीछे पांच अक्षर 'पंचाक्षर मंत्र' कहलाता है। इस मंत्र का भावार्थ नीचे अनुसार है -

'भगवान कृष्ण से अलग हुए हजारों वर्षो का समय व्यतीत होने से भगवान को मिलने के लिए हृदय में जो ताप-क्लेश का आनंद होना चाहिए, वह जिसका तिरोधान हुआ है, ऐसा मैं जीव भगवान कृष्ण को, गोपीजन वल्लभ को देह, इन्द्रिय, प्राण, अंतःकरण और इनके धर्म, स्त्री, घर पुत्र, कुटुम्ब, धन, यहलोक और परलोक आत्मा सहित समर्पण करता हूँ। मैं दास हूँ। हे कृष्ण! मैं तुम्हारा हूँ।'

सृष्टि की रचना के समय ब्रह्म में से उसके अंश रुप जीव विलग होने से, जीव में से आनंद अंश तिरोधान हुआ था। जिससे ब्रह्म के अलौकिक धर्म भी तिरोधान हुए, परिणाम में जीव स्वभाव से दुष्ट बना। अपना मूल स्वरुप भूल गया। ऐसे दोष वाले जीव का निर्दोष ब्रह्म के साथ संबंध किस तरह हो सकता है? जीव अपना मूल स्वरुप समझकर अपना कहलाने वाला सारा प्रभु को समर्पण कर दे और वह बिनाशर्त के संपूर्ण शरणागति स्वीकार कर प्रभु का दास बने, तो उसके सब प्रकार के दोष दूर हो और जीवका ब्रह्म के साथ फिर संबंध हो, ब्रह्मसंबंध का सारा समर्पण मानसिक है। मन से प्रभु को सर्व समर्पण करने की भावना करने की प्रमुखता है। सारा प्रभु को सोपकर, उस सबका ट्रस्टी बनकर रहना और प्रभु के लिए सारा जीवन व्यवहार चलाना, यही मुख्य भावना है। अपना शरीर और इन्द्रिय प्रभु के सुख के लिए भगवद् सेवा में हो यह, अपना दास धर्म है।

श्रीमहाप्रभुजी आज्ञा करते हैं कि, 'ब्रह्म संबंध बहुत छोटी उम्र में अज्ञान से लिया हो या बड़ी उम्र में समझ से किया हो तो फिर दोनों का फल एक सरिखा ही मिलेगा। कारण कि ब्रह्म का संबंध जीव के साथ है, शरीर के साथ नहीं। ब्रह्मसंबंध करने से देह और जीव के पाँच दोष निवृत्त होते है। जीव भगवद् सेवा के लिए उपयुक्त बनता है। जीव और ब्रह्म के बीच 'सेवक-स्वामी' की भावना पुनः स्थापित होती है। भविष्य में फिर दोष न हो इसलिए सब कुछ प्रभु को समर्पण करके, प्रसादी वस्तुओं से अपना जीवन व्यवहार चलाना चाहिए।'

जीव की अहंता ममता छूटते उसके संसार का नाश होता है। उसमें दीनता आती है। और अपने मूल स्वरुप का ज्ञान होता है। जीव की अहंता-ममता ब्रह्मसंबंध से छूटती है। इसलिए श्रीमहाप्रभुजी आज्ञा करते हे कि, 'ब्रह्मसंबंध लेना, इतना काँफी नहीं, ये लेने के बाद उसके द्वारा की हुई प्रतिज्ञा के पालन के लिए हमेशा श्रीहरि की शरण स्वीकार कर, दास भाव से उनकी सेवा करते हुए उनका स्मरण करना और भगवद् प्रसादी पदार्थो का सेवन करना चाहिए। भगवदीयों के संग में ब्रह्म संबंध की भावना का चिंतन करना चाहिए।'

ब्रह्मसंबंध से जीव को प्रभु की सेवा करने का अधिकार प्राप्त होता है। पुष्टि मार्ग में प्रवेश की प्रथम शर्त ब्रह्मसंबंध है। ब्रह्मसंबंध लेने के बाद सेवा न करें तो ब्रह्मसंबंध सार्थक होता नहीं है।

४. सेवा का स्वरुप

श्रीमहाप्रभुजी ने सेवा का स्वरुप बहुत स्पष्ट समझाया है। आप आज्ञा करते हैं कि, 'हमेशा सर्वात्मभाव पूर्वक ब्रज के अधिपति ऐसे श्रीकृष्ण की सेवा करनी चाहिए। श्रीकृष्णके अतिरिक्त दूसरे किसी की भी, किसी समय भी नहीं।'

'कृष्ण' अर्थात् परब्रह्म श्री पुरुषोत्तम, उनकी ही सेवा करनी चाहिए। श्रीयशोदानंदन श्रीकृष्ण ही पूर्ण पुरुषोत्तम है। इसलिए उनके सिवाय अन्य की सेवा न करे। वे ही पूर्णानंद है, उनके अतिरिक्त दूसरे किसी में भी यह सामर्थ्य नहीं है।

प्राणों से भी अधिक स्नेह देना चाहिए, उसी का नाम सर्वात्मभाव पूर्वक की सेवा है। जैसे लौकिक में ऐक सेवक अपने स्वामी के सुख और प्रसन्नता के लिए मन वचन और कार्य से सब कुछ करता है। उसी प्रकार जीव को भी प्रभु की प्रसन्नता के लिए सब प्रकार का व्यवहार हमेशा करना चाहिए। जिसमें प्रभु की प्रसन्नता हो उसका नाम 'सेवा' है।

ऐसी सेवा घड़ी दो घड़ी के समय के लिए मर्यादित न रहते, हमेशा निरन्तर चालु रहनी चाहिए। इसलिए अपना सारा जीवन सेवामय बनना चाहिए। जीवन के प्रत्येक कार्य में सेवा की भावना होनी चाहिए। प्रातःशरीर शुद्धि करें तब भी भावना ऐसी हो कि शरीर की दुर्गंध से प्रभु को श्रम न हो। नौकरी धंधा करते समय भावना ऐसी हो कि कमाये हुऐ द्रव्य सो प्रभु

की सेवा ठीक ढंग से हो सके। इस तरह अपने सर्व कार्य प्रभुमय बनजाय। उठते बैठते, सोते जागते, काम करते भगवद् सुख की ही भावना का चिंतन रहना चाहिए।

श्रीमहाप्रभुजी ने इससे ही सेवाकी व्याख्या करते हुए कहाँ है कि, 'चित्त का प्रभु में पिरोया हुआ रहना ही 'सेवा' कहते है, उसे मानसी सेवा भी कहते हैं।' इसलिए तनु-वित्तजा सेवा साधन है। जिस प्रकार योगी समाधि लेता है तब अपनी इन्द्रियों को व मन को लौकिक में से हटाकर प्रभु में जोड़ देता है, उसी प्रकार जीवन के आवश्यक कार्य करते रहते हुए भी मन प्रभु में ही जुड़ा रहना चाहिए। सेवा में महत्व मनका है। क्रिया तो साधन है। मन का स्वभाव अति चंचल है। इससे कई बार अपन जो करते हैं उसमें मन जुड़ा हुआ रहता नहीं है। मन को प्रभु में लगा हुआ रखने और स्थिर करने के लिए तनु-वित्तजा सेवा रुपी साधन आवश्यक है।

'तनु वित्तजा' सेवा अर्थात् अपने शरीर द्वारा, अपने घर में, अपने माथे विराजते प्रभु की अपने द्रव्य से सेवा करना। अन्य को द्रव्य देकर कराई सेवा, या अन्य से द्रव्य लेकर की हुई सेवा यह सेवा नहीं है। इसलिए तनु वित्तजा सेवा मन को पिरोकर करते हुअे स्वरुप भावना, लीला भावना व भाव भावना में धीरेधीरे मन एकाग्र होता है। मन की एकाग्रता बढ़ने पर मानसी सेवा सिद्ध होती है। इस तरह तनु-वित्तजा सेवा केवल क्रिया नहीं, यह समझ पूर्वक प्रभु के प्रति शुद्ध प्रेम का स्वरुप है।

महाप्रभुजी ने प्रकट किया हुआ सेवामार्ग अत्यन्त सरल है। राजा से लेकर रंक तक सब कोई अपनी सामर्थ्य के अनुसार सेवा कर सकता है। सेवा मार्ग में द्रव्य तथा साधन का महत्व नहीं है। यहाँ तक की ज्ञान का भी महत्व नहीं है। यहाँ तो मुख्यता हृदय के प्रेम की है। प्रेम का लड्डु बाते करने या पानी से बनता नही है। उसमें चाहिए जुट जाने की ताकत का तपा हुआ शुद्ध घी। सेवा मार्ग इतना सरल है कि किसी भी परिस्थिति में सेवा करना अशक्य नहीं है। इसके लिए निम्न बाते ध्यान में रखना चाहिए -

(१) जिस स्थान पर रहते है वहाँ जितना संभव उतना बाहर की तथा हृदय की शुद्धि रखना चाहिए।

(२) अपने द्वारा उपयोग की हुई कोई वस्तु प्रभु को अंगीकार न करावे।

(३) उत्तम वस्तु ही प्रभु को अंगीकार करावें।

(४) पहनने, ओढ़ने, खाने-पीने की समस्त वस्तुओं को अंगीकार कराने के बाद ही उसका उपयोग करें।

अपनी अनुकूलता के अनुसार अपने गुरुदेव की आज्ञा लेकर, उनके पाससे भगवद् स्वरुप सेव्य कराकर, पधराकर, सेवा करने का आग्रह अवश्य रखना चाहिए। सेवा कार्य में सभी कुटुम्बियों को शामील करना चाहिए। सेवा के लिए मन को तैयार करना यह पहली आवश्यकता है।

५. सेवा द्वारा निरोध :

अहंता-ममता रुपी संसार को भुलाकर, मन प्रभु में लगावें उसका नाम निरोध है। मन जब लौकिक आसक्ति में से छूटकर, प्रभु में स्थिर होने लगता है, तब संसार छूटने के प्रारंभ में मन में कष्ट होता है। लेकिन प्रभु के दर्शन से लौकिक दु:ख दूर होते है। मन प्रभुको पाने के लिये विशेष संरचना करता है। संसार दु:खरुप दिखने लगता है। प्रभु की प्राप्ति होने के बाद स्वरुपानंद का अनुभव होते ही मन प्रभु के साथ तल्लीन हो जाता है, उसका नाम निरोध है।

महाप्रभुजी निरोध की तीन अवस्थाएँ बताते हैं - (१) प्रथमावस्था- प्रभुसे विलग हुए होने का विरह ताप होता है, प्रभु प्रकट होकर दर्शन दे, ऐसा मनोरथ होता रहता है। इसलिए भगवद् गुणो का और भगवद् लीलाओं का कीर्तन करना चाहिए। कीर्तन करने से लोकलाज छूट जाती है। संसार भूलाता जाता है, और प्रभु में स्नेह बढ़ता है। (२) मध्यम अवस्था - जैसे जैसे प्रभुका विरह ताप बढ़ता है वैसे वैसे अंत:करण के दोष और संसार की

आसक्ति नाश होती है। प्रभु में आसक्ति के बढ़ते प्रभु के दर्शन की विशेष ईच्छा होती है। इसलिए प्रभु का गुणगान और सेवा चालु रखना चाहिए। मन बराबर प्रभुमें पीरोने से हृदयमें विराजते प्रभु कृपा कर, बाहर प्रकट होते हैं। (३) उत्तम अवस्था - प्रभु के दर्शन रुपी संयोग रस प्राप्त होने के बाद प्रभु वापस हृदय में बिराजते है, तब फलरुप विरह दशा प्राप्त होती है। भगवद् गुण गान और भगवद् कृपा से ही यह संभव होता है। सारी इन्द्रियों को भगवद् विनियोग कराना चाहिए, जिससे प्रभु के परमानंद स्वरुप की हमेशा के लिए प्राप्ति हो जाती है।

सेवा करते करते मन को लौकिक सुख दु:ख के आवेश में से समझ पूर्वक दूर रखे। सेवा के अनवसर में प्रभुकी स्वरुप भावना, लीला भावना और भाव भावना का विचार कर गुण गान करना चाहिए। लौकिक बाते आवश्यकतानुसार ही करना चाहिए। निंदा-स्तुति, गप-शप इत्यादि में मन लगाना नहीं चाहिए। घर का काम करते हुए भी प्रभु का गुणगान करना चाहिए।

६. सेवा के द्वारा भगवद् स्नेह बढ़ाएँ :

ब्रह्मसंबंध भक्तिका बीज है। जीस प्रकार खेत में बीज बोते है, खाद-पानी डालकर उसकी सेवा करते हैं तो छोड़ के रुप में विकसित होते हैं। उसी प्रकार ब्रह्मसंबंध द्वारा अपने हृदय में भक्ति रुपी बीज बोते हैं। उसकी मावजत के लिए तीन साधन हैं - १ - त्याग, २ - श्रवण, ३ - कीर्तन। अहंता-ममता का त्याग भक्ति रुपी बीज के विकास के लिए पहली शर्त है। जब तक मन लौकिक वस्तुओं और विचारों का त्याग करता नहीं है, मन में से लौकिक आसक्ति घटती नहीं है, मन लौकिक भोगवासनाओं में डूबा रहेगा, वहाँ तक मन प्रभुका विचार कर सकता नहीं, प्रभु में स्नेह कर सकता नहीं है। इससे जो जीव भगवद् स्नेह बढ़ाना चाहता है उसे लौकिक सुख और भोग-विलास, वासनाओं का त्याग करना प्रथम आवश्यकता है। स्वयं

के कृपा पात्र जीवों पर प्रभु कृपा कर उन्हें लौकिक में दु:ख देते हैं। स्वस्थ रहने देते नहीं, जिससे भक्त का मन लौकिक मे से निकलकर प्रभु से जुडे। इस तरह लौकिक में दु:ख आता है तो उसे भगवद् कृपा मानना चाहिए।

‘श्रवण’ अर्थात् भगवद् गुणगान सुनना, जिससे प्रभु के स्वरुप का ज्ञान होता है। मन प्रभु में लगता (पिरोना) है, इसलिए वैष्णव को सत्संग करना चाहिए। प्रभु की कथा सुनने से हृदय शुद्ध और प्रभु के योग्य बनता है।

श्रवण द्वारा प्राप्त भगवद्रस हृदय में स्थिर हो इसलिए श्रवण के बाद के समय में भगवद् लीलाओं का कीर्तन और चिंतन करना चाहिए, जिससे प्रभु में स्नेह बढ़ता है।

इन तीन साधनों से अपने मन में प्रभु के प्रति जो स्नेह बढ़ता है उसकी तीन अवस्थाएँ हैं- (१) प्रेम (२) आसक्ति (३) व्यसन। घर में रहकर सब प्रकार स्नेह पूर्वक प्रभुकी सेवा करने से लौकिक में से प्रेम की निवृत्ति होती है और प्रभु में स्नेहभाव प्रकट होता है उसे प्रेम कहते हैं। ऐसा प्रेम होने से प्रभु के वारंवार दर्शन करते हुए भी सन्तोष होता नहीं, मन प्रभु में लगा रहता है, बारबार प्रभु का ही स्मरण होता रहता है।

स्नेह के बढ़ने से घर की आसक्ति छूट जाती है। तब प्रभु में आसक्ति बढ़ती है, तब दिन में एक आध बार दर्शन न होने पर मन बेचेन होने लगता है। मानसिक उद्वेग बढ़ता है, परिणाम स्वरुप शारीरिक व्याधि भी होती है। उन्माद जैसी अवस्था हो जाती है।

मन जब संसार का सारा ध्यान भूल जाता है और प्रभुमय बन जाता है तब घर का सहज रीति से त्याग होता है, उसे व्यसन अवस्था कहते हैं। तब भक्त बाहर से निर्जिव जैसा बन जाता है, कभी मूर्छा आती है प्रभु के अलावा सब भान भुला देता है। एक क्षण प्रभु के बिना रह नहीं सकता। स्नेह की यह सर्वोपरी अवस्था है।

७. सेवामें आनेवाले प्रतिबन्ध :

सेवा करने में आनेवाली कठिनाईयाँ तीन प्रकार की है- उद्वेग, प्रतिबन्ध और भोग।

१. **उद्वेग :** अर्थात दुःख, दुःख मन का कारण है। इसका जन्म अत्यन्त भय, पाप या बुद्धिकी चंचलता से होता है। दुःख में डूबा हुआ मन प्रभु में लगता नही है। इसलिए उद्वेग से की हुई सेवा मात्र क्रिया हो जाती है। वह सेवा रहती नहीं। उद्वेग लौकिक है, अहंता-ममता में से जन्मता है। इसलिए भगवद भावका चिंतन करने से उद्वेग को दूर किया जा सकता है। प्रसन्न चित्त रहना यह जीव के हाथ की बात है। प्रभु की रस रुप लीला के स्मरण से चित्त प्रसन्न होता है। इसलिए यह कठिनाई, जीव अपने प्रयत्न से दूर कर सकता है।

२. **प्रतिबन्ध :** सेवा से प्रतिकूल बाबत में शरीर और इन्द्रियों का जुड़ना उनका नाम प्रतिबंध। उसके मुख्य दो प्रकार है - एक जीव कृत, दूसरा-भगवद् कृत। सेवा के समय में नौकरी, धंधा या अन्य कोई कार्य आजावे वह जीव कृत प्रतिबन्ध है। प्रभु प्रेरीत बुद्धि से उसे दूर कर सकते हैं। जीव के सारे प्रयत्न करते हुए भी। कभी प्रभु अपनी सेवा जीव से करवाने की ईच्छा करता नहीं है। जीव के प्रयत्न तब सफल होते नहीं। ये प्रतिबन्ध भगवद् कृत प्रतिबन्ध है। ऐसा प्रतिबन्ध आजाय तब जीव ने अपने अपराधो और हीन भाग्य का ताप करना चाहिए। स्वमार्गीय सिद्धान्तों का मनन चिंतन करना चाहिए।

३. **भोग :** दो प्रकार के हैं - लौकिक तथा अलौकिक। लौकिक भोग का संबंध शरीर तथा इन्द्रियों के साथ है। जहाँ तक लौकिक सुख में आसक्ति हो वहाँ तक 'मन' प्रभु में लगता नहीं है। इससे लौकिक भोग छोड़ना चाहिए। उसका मन से त्याग कर, वे वृत्तियाँ प्रभु की और मोड़ना चाहिए। अलौकिक भोग सेवा में प्रतिबंध रुप नहीं है। इसलिए उत्तम वस्तुओं को प्रभु को अंगीकार करवाने का आग्रह रखना यह अलौकिक भोग हैं।

८. सेवा के फल

श्री महाप्रभुजी ने सेवा के तीन फल बताये हैं१ अलौकिक सामर्थ्य, २. सायुज्य, ३. सेवोपयोगी देह । सर्वात्मभाव से प्राप्त हुआ स्वरुपानंद का अनुभव अर्थात् अलौकिक सामर्थ्य। इस में प्रभु की अन्तरंग सेवा का सुख मिलता है। (२) सायुज्य वाले भक्त के साथ प्रभु का रमण करने की इच्छा होती है तब उसको अपने हृदय में से बाहर प्रकट कर, उसके साथ रमण करता है। (३) सेवोपयोगी देह अर्थात् सेवा में उपयोगी वनस्पति, पशु, पक्षी आदि के देहकी प्राप्ति।

इस तरह श्री महाप्रभुजी ने सेवा का बहुत ही सरल, सुन्दर और स्पष्ट स्वरुप बताया है। इसे समझकर तन, मन और धन से प्रभु की सेवा में डूब जाना चाहिए।

पुष्टि मार्ग के ये मुख्य सिद्धान्त है।

९. पुष्टिमार्ग में सेव्य भगवद् स्वरुप

पिछे देख आए है कि पुष्टिमार्ग भगवान की कृपा प्राप्त करने का मार्ग है। ब्रह्म स्वरुप में से अपन जीव स्वरुप प्रकट हुए होने से अपन प्रभु के दास हैं। इससे दास के रुप में अपना (फर्ज) कर्तव्य अपने स्वामी (ऐसे प्रभु)की सेवा करने का है। अपने यहाँ भगवान के अनेक स्वरुप मिलते हैं। उन में से पुष्टिमार्गीय भक्त को किस स्वरुप की सेवा करनी चाहिए ऐसा प्रश्न स्वाभाविक रुप से होता है। श्री महाप्रभुजी ने चारो प्रमाणो द्वारा बहुत स्पष्ट तरीके से आज्ञा की है कि, 'सारस्वत कल्प में गोकुल में श्री नन्दरायजी के यहाँ श्रीयशोदाजी की कुख में से प्रकट हुए श्रीकृष्ण ही पूर्ण पुरुषोत्तम परब्रह्म है। वेही रसो-वे-सः और आनंदकरपादमुखोदरादि है। दूसरे सारे देवी देवता इस पूर्ण पुरुषोत्तम स्वरुप में से भगवद् इच्छा से प्रकट हुए, उनके विभूति रुप, अंश अथवा कला स्वरुप हैं। मथुरा में देवकीजी कुख से प्रगट हुए श्री कृष्णचन्द्र भी चार व्यूह सहित प्रकटे हैं।' श्री देवकीनंदन और श्री

यशोदानंदन कृष्ण के बीच सूक्ष्म भेद हैं, ऐसा श्री महाप्रभुजी ने समझाया है।

मथुरा और गोकुल में दोनो स्थानो पर एक ही समय, एक साथ भगवद् प्राकट्य हुआ था। गोकुल में श्रीयशोदाजी कुक्षे जन्माष्टमी की मध्यरात्री में श्रीपूर्ण पुरुषोत्तम का प्रादुभार्व हुआ था। उसी समय प्रभु के साथ उनकी योगमाया नाम की शक्ति भी अवतरित हुई थी। इससे गोकुल में हुई भगवद् प्रादुर्भाव की जानकारी उस समय स्वयं श्रीयशोदाजी को भी हुई नहीं, जब श्री वासुदेवजी चतुर्व्यूहात्मक स्वरुप श्री देवकीनंदन को गोकुल में पधराकर योगमाया रुपी कन्या को अपने साथ ले गये, जिस प्रकार पात्र में रस डाले व इकट्ठा करें उसी प्रकार गोकुल में प्रकट हुए रस-रुप पूर्ण पुरुषोत्तम अपने ही द्वितीय चतुर्व्यूहात्मक स्वरुप में विराज गये और गोकुल में भगवद् प्राकट्य की सबको खबर हुई।

श्रीब्रजभक्तो के साथ की हुई सारी रसात्मक लीलाओं, रसरुप पूर्ण पुरुषोत्तम यशोदानंदन की है, जब दुष्टो के संहार इत्यादि की धर्म स्थापना की लीलाएँ अपने व्यूहात्मक स्वरुप की है, इससे जब प्रभु मथुरा वापस पधारे तब गोकुल में प्रकट हुए पूर्ण पुरुषोत्तम स्वरुप हमेंशा के लिए सूक्ष्म रुप में ब्रज भक्तो के हृदय में बिराज गये और मथुरा से पधारा हुआ चतुर्व्यूहात्मक स्वरुप श्री देवकीनंदन मथुरा वापस पधार गया। श्री पूर्ण पुरुषोत्तम का स्वरुप ब्रज छोड़कर और कहीं गया ही नहीं।

इससे श्री महाप्रभुजी श्री देवकीनंदन स्वरुप के लिए 'देव' शब्द का प्रयोग करते हैं। तो श्रीयशोदानंदन स्वरुप के लिए 'गोकुलेश्वर ब्रजके अधिपति परम तत्व' ऐसे शब्द का प्रयोग कर, दोनों स्वरुपों के बीच का अन्तर बहुत स्पष्ट तरीके से समझाते हैं।

श्री कृष्णचन्द्र स्वरुप से प्रभुने अवतार भी अलग अलग कल्पों में एक से अधिक बार लिया है। इसमें से 'सारस्वत नाम के कल्प में प्रकटे हुए श्रीयशोदानंदन ही पूर्ण पुरुषोत्तम है।' अन्य कल्पो में प्रकटे श्रीकृष्णचन्द्र पुरुषोत्तम है लेकिन पूर्ण पुरुषोत्तम नहीं है। इसलिए सारस्वत कल्प में प्रकटे हुए श्रीयशोदानंदन ही पुष्टिमार्गीय वैष्णवों के आराध्य सेव्य स्वरुप हैं। यही स्वरुप दैवी जीवों पर कृपा करने के लिए वि.सं. १५३५ के चैत्र कृष्ण पक्ष एकादशी के दिन श्रीगिरिराजजी में से स्वईच्छा से श्रीगोवर्धननाथजी के स्वरुप से प्रकट हुआ। और श्री महाप्रभुजी ने उनका सेवा प्रकार प्रारंभ किया। इसलिए श्रीगोवर्धननाथजी साक्षात् 'सारस्वत कल्प' के श्री यशोदानंदन श्रीकृष्ण का ही स्वरुप है। दोनों स्वरुपों में किसी प्रकार का भेद नहीं है। इसलिए श्रीगोवर्धननाथजी अपने आराध्य सेव्य स्वरुप हैं।

ऐसे रसात्मक पूर्ण पुरुषोत्तम स्वरुप ने, रसरुप अनेक प्रकार की बाल-किशोर लीलाएँ सारस्वत कल्प में की थी। श्रीनाथजी निकुंज नायक होने से सारी ही रसात्मक लीलाएँ आपके स्वरुप में प्रकट बिराजती हैं। श्रीनाथजी के साथ साथ अलग अलग रसात्मक लीलाओं की विशिष्ट भावना विशिष्ट स्वरुप भी स्वइच्छा से प्रकट हुए है। और श्रीमहाप्रभुजी, श्रीगुसांईजी द्वारा वैष्णवों को प्राप्त हुए हैं। जिस तरह कि बालकृष्णलालजी और श्री नवनीतप्रियाजी बाललीला की भावना के स्वरुप हैं। श्री द्वारिकाधीशजी श्रीगोकुलचन्द्रमाजी, श्रीगोकुलनाथजी आदि किशोरलीला की भावनाओं के स्वरुप हैं। इन स्वरुपों ने की हुई विशिष्ट लीला इनमें प्रकट बिराजती है और अन्य लीलाए गुप्त विराजती है। ये सब स्वरुप पूर्ण पुरुषोत्तम श्रीयशोदानंदन ऐसे श्रीगोपीजन वल्लभ के हैं, इसलिए श्रीगुसांईजी आज्ञा करते हैं कि, 'परम तत्व केवल श्रीयशोदानंदन को ही जाने उनके सिवाय दूसरे किसीको कोई परमतत्व कहता हो तो उसे आसुरी गिने।'

इस तरह श्री यशोदानंदन पूर्ण पुरुषोत्तम परब्रह्म है। शेष सब देव उनके गुणात्मक स्वरुप हैं। जिस प्रकार एक रुपिये का परचूरण आता है, परंतु परचूरन का रुपया आता नहीं इसलिए श्री आचार्यचरण हमेशा सर्वात्मक भावपूर्वक ब्रज के अधिपति श्रीयशोदानंदन की ही सेवा-स्मरण करने की

आज्ञा करते हैं। श्रीगुसांईजी भी यह आज्ञा करते हैं कि, 'श्रीयशोदाजी की गोद में खेलने वाले नंदनंदन की ही सेवा करना और वृन्दावन में ब्रजभक्तो के साथ विहार करने वाले श्रीकृष्णचन्द्र का स्मरण करना चाहिए।'

मर्यादामार्गीय पूजा प्रकार और पुष्टिमार्गीय सेवा प्रकार में भिन्नता है। मर्यादामार्ग में जिनका पूजन करने में आता है, उन्हें मूर्ति और चित्र कहते हैं। जोभी देवता आव्हाहन और विसर्जन के मंत्रो से उस मूर्ति या चित्र में उस उस देव की प्रतिष्ठा करके फिर उनका पूजन करते हैं। पुष्टिमार्गीय भगवद् स्वरुप मूर्ति या चिंत्र नहीं है। कारण कि श्रीमहाप्रभुजी और उनके वंशज द्वारा उस मूर्ति या चित्र में भगवद् स्वरुप साक्षात् पधराने में आते है। जिस प्रकार निर्जिव शरीर में प्राण प्रतिष्ठा से वे जीवंत बनते हैं, ऐसा ही होता है, इससे वह मूर्ति न हुए स्वरुप-अपना साक्षात् स्वरुप बन जाता है। और उससे पुष्टिमार्गीय वैष्णव प्रभु की सेवा करते हैं तब वे कोई जड़ मूर्ति या चित्र की सेवा करते नहीं, लेकिन साक्षात प्रभुकी ही सेवा करते हैं और प्रभु जिन पर कृपा करते हैं उन्हैं उस स्वरुप या चित्रजी द्वारा अपने साक्षात् स्वरुपके दर्शन कराकर उनका अनुभव भी कराते हैं।

मर्यादामार्ग में मूर्ति खंडित होते ही नई मूर्ति की प्राण प्रतिष्ठा होती है। पुष्टिमार्ग में साक्षात् प्रभु ही उस स्वरुप में बिराजते होने से पुनःस्वरुप सेव्य कराने का और बदलाने का प्रकार नहीं है। पुष्टिमार्ग में ऐसे भगवद स्वरुप अपने स्वामित्व की जड़ संपत्ति नहीं है। परंतु अपने कुटुम्ब के ही वे भी एक सदस्य हैं। अपने परिवार में वे भी बालक हैं, ऐसी भावना से ही उनकी सर्व सेवा की जाती है।

१०. गुरु भक्ति

अपन श्री ठाकुरजी के दर्शन, सेवा, स्मरण इत्यादि करते है वह तो ठीक है लेकिन साथ में गुरु भक्ति भी आवश्यक है। मर्यादा मार्ग में भी गुरुभक्ति का बहुत माहात्म्य हैं। 'गुरु बिना ज्ञान नहीं' यह कहावत हम जानते है।

मर्यादा मार्ग से पुष्टिमार्ग में गुरु भक्ति का अधिक महत्व स्वीकार किया है। गोस्वामी श्रीपुरुषोत्तमजी आदि महानुभाव आज्ञा करते हैं कि श्रीमहाप्रभुजी अपने सबके गुरु है। और वल्लभकुल गुरुद्वार है। वस्तुतः श्रीवल्लभ और श्रीवल्लभकुल एक ही है। उनमें भेदभाव नहीं है। जिस प्रकार घर और घर का द्वार अलग हो नहीं सकता। पुष्टिमार्ग में पुष्टिजीवों को गुरुकृपा से ही प्रभु प्राप्ति होती है। कष्ट साध्य साधन पुष्टि जीवों को करना पड़ता नहीं है। लेकिन इसमें हमारा विश्वास होना चहिए।

श्रीवल्लभकुल यही है, परंतु जिसको इसमें पुरुषोत्तमभाव है उसे फलदान प्राप्त होता है। एक बार कल्याण भट्टजी ने श्रीगोकुलेश प्रभु से विनंती की थी कि, 'कृपानाथ, आपतो पुरुषोत्तम हैं।' तब आपश्री ने बताया कि, 'इस तरह नहीं,' हमारे प्रति तुम्हारा जो भाव है, वो पुरुषोत्तम स्वरुप है। जो भाव है वह सब कुछ है। जो भाव नहीं तो कुछ भी नहीं। कारण कि, यह निर्गुण भक्ति मार्ग भावना पर ही अवलंबित है। इस मार्ग में श्रीपुरुषोत्तम प्रभु स्वयं ही गुरु रुप में प्रकट हुए हैं। इसलिए गुरुसेवा यह भी भगवद् सेवा ही होती है। भगवान के साक्षात् दर्शन तो उच्च कक्षा में आये हुए जीवों को ही होते हैं। जब गुरु तो दोष युक्त जीवों को भी दर्शन देकर कृतार्थ करते हैं। इसलिए श्रीमहाप्रभुजी को अपना गुरुदेव मानकर, श्रीमहाप्रभुजी और वल्लभकुल में द्रढ़ गुरु भक्ति रखना चाहिए।

११. प्रभु प्राप्ति में आते चार प्रतिबन्ध :

अपन ब्रह्मसंबंध लेकर सेवा करते हैं। फिरभी भगवद् प्राप्ति सरलता से होती नहीं। भगवद् प्राप्ति में आडे आते चार प्रतिबन्ध श्रीमहाप्रभुजी ने बताये है-(१) असमर्पित, (२) अन्याश्रम, (३) दुःसंग, (४) असदालाप। ये चारो ही तत्व पुष्टिमार्ग में महान बाधक हैं।

(१) असमर्पित : प्रभु को अंगीकार कराये बिना वस्तु असमर्पित कहलाती है। ऐसी असमर्पित वस्तु दोष युक्त होती है।

हमने ब्रह्मसंबंध के द्वारा दास धर्म स्वीकार किया है। अपना माना हुआ सारा प्रभु को समर्पण कर दिया है। सच्चा दास धर्म यह पतिव्रता धर्म है। पतिव्रता स्त्री, पति प्रसन्न हो इसके लिए सारी सुख सुविधा इकट्ठी करती है। उसी प्रकार अपन भी अपने पास जो कुछ है वह सब प्रभुका है, इसलिए उनको अंगीकार कराये बिना उसका उपयोग कर नहीं सकते। प्रभु अपने पति हैं। उन्हें आरोगाये बिना जो अन्न खाएगें वह असमर्पित कहलाएगा। उससे अपनी बुद्धि में अनेक दोष आते है। प्रभु इससे अप्रसन्न होते हैं। शास्त्रो ने भी असमर्पित लेने के अनेक दोष बतायें हैं। इस तरह असमर्पित सबसे अधिक बाधक है। अपराध रुप है।

केवल खान पान की वस्तुओं का प्रभुको अंगीकार कराने से अपन असमर्पित का त्याग किया, ऐसा नहीं कह सकते। जीवन में उपयोगी सारी वस्तुओं प्रत्यक्ष या परोक्ष तरीके से प्रभु को अंगीकार करानी चाहिए। इस प्रकार सारी वस्तुओं को पहले प्रभु के लिए विनियोग करें, फिर प्रसादी रुप वस्तुओं से अपना जीवन निर्वाह करें, यही सच्चा दास धर्म हैं।

जहाँ पुष्टिमार्ग की रीति अनुसार अपरस रख कर प्रभु को भोग लगाये, ऐसा संभव न हो वहाँ भी मन से प्रभुको वह अन्न अंगीकार करा सकते हैं। शर्त इतनी है कि वह वस्तु उपयोग में ली हुई नहीं होना चाहिए। भोजन की समस्त वस्तु को थाली में संजोकर मन से प्रभु का चिंतन कर ले सकते हैं। चरणामृत पधरा कर खाने पीने की वस्तुओं का उपयोग कर सकते हैं। ऐसे करते 'मुझसे कुछ बनता नहीं हैं।' ऐसा पछतावा भी होना चहिए।

(२) अन्याश्रय : अन्य का आश्रय - उसका नाम अन्याश्रय। जिस प्रकार लौकिक में स्त्री के लिए उसके पति के अलावा सारे पुरुष अन्य हैं- पराये है। उससे वह पति के साथ जिस प्रकार का व्यवहार करती है, ऐसा व्यवहार अन्य के साथ करेगी नहीं, जैसा स्त्री के लिए है, वैसा पुरुष के लिए भी है, वह अपनी पत्नी के प्रति ही ईमानदार रहता है, इससे दोनों का प्रेम बढ़ता है और द्रढ़ होता है।

ऐसा ही अलौकिक में भी है। अपन श्रीकृष्ण के दास हुए हैं, उन्हें पति रुप में स्वीकारा है। अपना सर्वस्व उन्हें समर्पण किया है। अब उनकी ही सेवा और स्मरण यह अपना धर्म है, उनके बदले अन्य देवी-देवता का दर्शन, पूजन, स्मरण करने से और प्रसाद लेने से, अपने द्वारा ब्रह्म संबंध के समय की गई प्रतिज्ञा टूट जाती है। अपनी भक्ति पतिव्रता धर्मवाली रहती नहीं है। इसका नाम अन्याश्रय। इसलिए महाप्रभुजी आज्ञा करते हैं कि, 'अन्य देवकी सेवा करने की आवश्यकता नहीं है। उनके मन्दिर में भी जाने की आवश्यकता नहीं है। उनके पास प्रार्थना करने की भी आवश्यकता नहीं है।'

परब्रह्म श्रीकृष्णसे श्रेष्ठ जगत में दूसरा कोई नहीं। अपनने उसकी शरणागति प्राप्त की है। दूसरे देवी-देवता उनके अंश अवतार हैं। जिस प्रकार द्वितीया का चन्द्र पूर्णिमा के चन्द्रमा के बराबर प्रकाश नहीं देता, उसी प्रकार देवी-देवता पूर्ण पुरुषोत्तम के बराबर फल दे नहीं सकते, वे स्वतंत्र नहीं है, उनकी शक्ति सीमित है। उनका फल देने का अधिकार मर्यादित है इसलिए वे प्रभु की बराबरी नहीं कर सकते। प्रभु की सेवामें उनका सन्मान अपने आप हो जाता है। इससे उनका अलग विचार करने की आवश्यकता रहती नहीं है।

प्रभु के अलावा अन्य किसी की भी शरण का विचार मात्र भी करना यह अन्याश्रय है। ग्रीष्मकाल की तेज गर्मी में ठंडी हवा आते ही कहते है, 'इस हवा ने शांति दी है।' तो वहाँ मन से पवन का आश्रय करना कहा जायगा क्या? हम भूल गये है कि पवन देने वाले भी प्रभु हैं। प्रभु का आश्रय न करते पवन का आश्रय किया, तो वह अन्याश्रय हुआ, कहलाएगा। किसी के यहाँ नोकरी करते कहते है कि, 'तुम हमारे अन्नदाता हैं।' वहाँ पर भी हमने उस व्यक्ति का आश्रय किया और प्रभु का आश्रय छोड़ा, इसलिए अन्याश्रय कहलायेगा।

इसका अर्थ ऐसा नहीं कि पुष्टिमार्गीय वैष्णव अन्य देवी-देवता का तिरस्कार करें या उनसे अशोभनीय बर्ताव करें। वे भी प्रभुके अंश है, इसके

लिए सन्मान के पात्र हैं। लेकिन अपने को उनकी आवश्यकता नहीं है। इसलिए उनके साथ सम्बन्ध रखना नहीं। लेकिन उनका अपमान भी करें नहीं।

जीवन में आवश्यक वैदिक विधि के समय अन्य देवताओं का पूजन इत्यादि वैदिक कर्म, निरपेक्ष भाव से, उसमें मन रखे विना, फल की कामना रखे सिवाय, आवश्यक हो उतना करना, ऐसी श्रीमहाप्रभुजी की आज्ञा है।

(३) दु:संग : दु:संग अर्थात् खराब संग। प्रभु द्वारा बनाई इस सृष्टि में अच्छा कौन और खराब कौन? किसका संग सत्संग और किसका दु:संग गिने?

श्रीमहाप्रभुजी के सेवक बनकर, उनके सिद्धान्तों को समझकर, अपने जीवन में उतारते हो, ऐसे वैष्णवों का संग सत्संग है। श्रीमहाप्रभुजी के मार्ग से जो विमुख हैं, जिनके आचार-विचार विपरित है, उनका संग वह दुसंग है।

जिस तरह अग्नि पर पानी डालते हैं तो अग्नि बूझ जाती है। परंतु अग्नि पर बरतन रख कर पानी डालते है तो अग्नि बूझती नहीं और पानी जल जाता है। इस प्रकार अग्नि ये भगवद् भाव है, इस पर दु:संग रुपी पानी सीधा पड़ता है तो अपने हृदय में रहते भगवदभाव का नाश होता हैं, अपन प्रभु से विमुख होते हैं, परंतु यदि बिचमें सत्संग रुपी पात्र हो तो वह दु:संग रुपी पानी जल जायगा, भगवद्भाव रुपी अग्नि बूझेगी नहीं।

मन को प्रभु के चरण में द्रढ रखने के लिए सत्संग अधिक आवश्यक है, इसलिए अपने मार्ग में प्रतिदिन रात्री को भगवद् वार्ता करने का क्रम चला आता है। भगवद्वार्ता में नहीं जा सकते तो अनुकुल समय में घर-कुटुम्बीयों के साथ इकट्ठे होकर भगवद्वार्ता करें। संप्रदाय के ग्रन्थ पढ़े, उसका अर्थ समझना, उस विषय पर प्रश्नोत्तर भी करना। अधिक न हो सके तो प्रतिदिन शिक्षापत्र, ८४-२५२ वैष्णवो की वार्ताओं का वाचन, मनन, चिंतन अवश्य करना चाहिए।

(४) असदालाप : भगवद् नाम के सिवाय लौकिक बाते करना उसका नाम असदालाप। अपने मन की एक विशेषता है कि इसमें एक समय एक ही वस्तु का विचार हो सकता है। मन एक समय में प्रभु नाम स्मरण और लौकिक बाते दोनों कर नहीं सकता। अपना मन आवारा पशु जैसा है। उसको लौकिक बातों के उकेडे को बिखेरने में ज्यादा रस आता है। और इससे वे प्रभु से विमुख होकर बहिर्मुख होता है। इसलिए महाप्रभुजी आज्ञा करते हैं कि, 'गाय के सिंग पर राई का दाना टीके इतनी देर भी जो भगवद्नाम चुक जायगा तो मन बहिर्मुख हो जायगा।' इसलिए सतत अष्टाक्षर मंत्र, 'श्रीकृष्ण शरणंमम्' का जप करते रहना चाहिए।

मन प्रभु में एकाग्र हो इसके लिए प्रभु की विविध लीलाओं का कीर्तन, स्मरण, चिंतन, करना चाहिए। प्रभु के स्वरुप का, श्रीमहाप्रभुजी, श्रीगुसांईजी, श्री यमुनाजी, श्री गिरिराजजी आदि स्वरुपों का मन में ध्यान करना चाहिए। व्रज भूमि के लीला स्थलों का भी चिंतन करना चाहिए। मन की वृत्तियो को लौकिक मे से अलौकिक की ओर मोड़ना चाहिये। मन को अन्तर्मुख करना हो तो नाम स्मरण एक आवश्यक साधन है।

१२. विवेक, धैर्य और आश्रय

सत्संग, स्मरण, कीर्तन, सेवा इत्यादि द्वारा प्रभु में अपनी भक्ति भावना का बीज अंकूर रुप से फूटता है, उसके रक्षण के लिए विवेक, धैर्य, आश्रय की वाड जरुरी है।

विवेक : जगत में अपनी ईच्छानुसार कुछ भी होता नहीं है। ऐसा ज्ञान होते हुए भी जब अपनी इच्छा के विरुद्ध कुछ भी होता है तब अपन घबरा जाते हैं, अपना मन प्रभु में से हठ जाता है और कभी तो प्रभु के प्रति भी अभाव उत्पन्न हो जाता है।

इस परिस्थिति को टालने के लिए प्रभु इस जगत के नाथ है, उनकी ईच्छा के अनुसार सब होता है, दुनिया की द्रष्टि मे खराब दिखनेवाली चीज

भी अन्त में जीव का हित करने वाली होने से प्रभु ने उसका निर्माण किया है। इस विचार का हमेशा ध्यान रखकर, 'प्रभु जो करता है सो अच्छा करता है।' का स्मरण करने से अपना चित्त व्यग्र बनेगा नहीं और मन प्रभु में पिरोया रहेगा। ऐसा विचारना उसका नाम विवेक।

श्री महाप्रभुजीने विवेक के नौ प्रकार बताये हैं - (१) प्रभुने अपन को अंगीकार किया है। इसलिए प्रभु सारी आवश्यकताएँ पूर्ण करेगें ऐसा विश्वास रखकर भगवद् सेवा करना चाहिए। (२) सब के ईश्वर प्रभु, भक्त की इच्छा लौकिक होगी तो अपनी ईच्छानुसार करेगें। और भक्त की इच्छा अलौकिक होगी तो भक्तकी इच्छा के अनुसार करेगें। ऐसा विश्वास रखें। (३) प्रभु की इच्छा जीव को जोकुछ देने की होगी वह देगे ही। प्रभु सब वस्तु देने में समर्थ है। इसलिए उनकी सेवा छोड़कर कोई वस्तु प्राप्त करने का प्रयत्न न करना चाहिए। प्रार्थना करने से दास धर्म की हानी होती है। (४) अपन प्रभु के दास हैं, ऐसी भावना रखकर अभिमान त्यागे। (५) देहादि का प्रभु को समर्पण किया हैं, इसलिए विषय वासना से दूर रहकर देहादि का उपयोग भगवद् सेवामें करें। (६) प्रभु सेवोपयोगी विशेष आज्ञा करते हैं तो उसका अवश्य पालन करें। (७) आपत्ति के समय में जो मिले उससे चला लेवे। कोई वस्तु के लिए हठ करना नहीं चाहिए। (८) भगवद् सेवा का त्याग करके अन्य लौकिक, वैदिक कार्य करने का आग्रह रखना नहीं चाहिए। (९). जिस कर्म को करने से पाप और अधर्म होता है ऐसे कर्म न करें।

धैर्य : अर्थात् धीरज, दु:ख जो आजाय उन्हें सहन करें, उसका नाम धैर्य। दु:ख तीन प्रकार का हैं। देह सम्बन्धी दु:ख, आधिभौतिक दु:ख कहलाते हैं। काम क्रोध इत्यादि इन्द्रियों सम्बन्धि दु:ख आध्यात्मिक दु:ख कहलाता है। प्रारब्ध भोगने का, प्रभु ने फल देने में विलंब किया जिसका दु:ख आधिदैविक दु:ख कहलाता है।

देह सम्बन्धी जो दु:ख होता है, अपमान इत्यादि होते है तो उसे सहन करना। स्त्री पुत्रादि सेवामें अनुकूल न हो तो उनके साथ विरोध न करते स्वयं सेवा करना और कौटुम्बिक जवाबदारी पूरी करना।

अपने विषय रुप भोग्य वस्तुओं का त्याग करने के लिए दु:ख होता है। इसलिए इन्द्रियों को प्रभु की और मोड़ना चाहिए। भोग की सारी सामग्री प्रभुको समर्पित करें। हृदय में भगवदावेश रखें।

प्रारब्ध भगवान के आधीन है। कुटुम्बियों का तिरस्कार, मित्रों की ईर्षा, भाईयों का द्वेष, नौकरो द्वारा अपमान इत्यादि को प्रारब्ध का दु:ख मानना चाहिए। इन संजोगो मे भक्त को किसी का तिरस्कार न करना चाहिए। किसी पर क्रोध न करें। कभी जीव की परीक्षा के लिए फल देने में प्रभु विलंब करते हैं। उस समय भी प्रभु की लीला में धैर्य रखना चाहिए।

आश्रय : प्रभु की शरण में आकर, भगवद् सेवा करने वाला भक्त विवेक, और धैर्य धारण न कर सके तो उसे श्री हरि की शरण की भावना रखनी चाहिए। अपने साधन से कुछ होता नहीं, ऐसा विचार कर प्रभु का आश्रय करना चाहिए। मन, वचन और कर्म से प्रभुका आश्रय रखने से असंभव लगने वाली बातभी संभव हो जाती है। जब संसार के सुख प्राप्त नहीं होते हैं, भगवद् सेवा में अपराध हो, जानते अजानते पाप हो जाय, भक्त अपमान करता है, सेवा में मन नही लगता है। अभिमान होता है ऐसी सारी स्थितियों में प्रभुकी शरणागति स्वीकार कर रहना चाहिये। वाणी से प्रभु का कीर्तन करना चहिए। लेकिन शरणागति मे अविश्वास कभी न करें।

१३. भक्तिमार्गीय संन्यास

ज्ञानमार्ग और भक्तिमार्ग में पश्चाताप की निवृत्ति के लिए संन्यास बताया है। भक्तिमार्ग में जीव जहाँ तक साधन दशा में है, वहाँ तक उसे संन्यास सुख रुप बनता नहीं है। परंतु भगवद् कृपा से जीव नि:साधन बनकर, विरह का अनुभव करके फल दशा को प्राप्त होता है, तब ही संन्यास सुख रुप बनता है।

पुष्टिमार्गीय संन्यास संपूर्ण भगवद् भाव प्राप्त होने के बाद की स्थिति है, कारण भगवान के विरह का अनुभव करने के लिए प्रथम भगवद् संयोग का सुख जरुरी है। ऐसा सुख मिलने के बाद ही उसके वियोग में विरह का अनुभव हो सकता है। इसलिए प्रथम भावपूर्वक प्रभु के दर्शन, सेवा इत्यादि आवश्यक है। सेवा अनवसर में विरह का अनुभव धीरे धीरे बढ़ता जाता है, एक स्थिति ऐसी आती है कि घर का बंधन असह्य बनजाता है। मन में व्याकुलता और अस्वस्थता रहती है। ऐसी दशा होने पर अपने आप घरके बंधन छूट जाते हैं। ऐसा त्याग उत्तम त्याग है। इस तरह नि:साधन होकर, दीनता आने से प्रभु प्रत्यक्ष होते हैं। वही भक्तिमार्गीय संन्यास है। भक्तिमार्गीय संन्यास में संन्यासी का वेश - परिधान धारण करके, विधिवत संन्यास धारण करने की आवश्यकता नहीं है।

* * *

७. प्रकीर्ण विषय

१. श्रीमद्भागवतः

जब अनेक शास्त्र पुराण रचने के बाद श्री वेदव्यासजी को सन्तोष नहीं हुआ, तब श्रीनारदजी की सूचना के अनुसार भगवान की लीलाओं का वर्णन करने के लिए उन्होंने श्रीमद्भागवत की रचना की। श्री वेदव्यासजी को समाधि में भगवद्लीलाओ का जो अनुभव हुआ उसका 'निरुपण' इस ग्रन्थ में है। इस ग्रन्थ में बारह स्कंध हैं, बारह स्कंधो में कुल अठारह हजार श्लोक है।

श्रीमहाप्रभुजी ने सिद्धान्तों के प्रतिपादन के लिए चार मुख्य शास्त्रों को प्रमाण माना है। इन चार शास्त्रों में वेद, गीता, ब्रह्मसूत्र, साथ में श्रीमद्भागवत को भी स्थान दिया है। श्रीमहाप्रभुजी आज्ञा करते हैं कि, 'पहले तीन शास्त्रों से प्रमाणित किये सिद्धान्तो स्पष्ट न होने पर श्रीमद्भागवत से सरलता से स्पष्ट होता है। श्रीमद्भागवत आप्त प्रमाण है।'

पूर्ण पुरुषोत्तम श्रीनाथजी दो स्वरुपों में भूतल पर बिराजते है। एक आपका प्रकट स्वरुप श्रीगोवर्धननाथजी का है। जो श्रीनाथजीद्वारा में बिराजते हैं। श्रीनाथजी का दूसरा स्वरुप नाम स्वरुप हैं। वही श्रीमद्भागवत हैं। जिस प्रकार श्रीनाथजी के स्वरुप के बारह अंग है, उसी प्रकार श्रीमद्भागवत के बारह स्कंध हैं, वे नीचे अनुसार हैं-

स्कंध	लीला	श्रीअंग का नाम
१.	अधिकार लीला	दक्षिण चरण.
२.	साधन लीला	वाम चरण
३.	सर्ग लीला	दाहिना बाहु
४.	विसर्ग लीला	बाँया बाहु

५.	स्थान लीला	दक्षिण जंघा
६.	पोषण लीला	बांयी जंघा
७.	उत्ति लीला	दाहिना हाथ
८.	मन्वन्तर लीला	दक्षिण स्तन
९.	इशानु कथा लीला	वाम स्तन
१०.	निरोधलीला	हृदय
११.	मुक्ति लीला	मस्तक
१२.	आश्रय लीला	वाम हस्त

इसके दशम स्कंध में भगवान श्रीकृष्ण का चरित्र है। उसमें पूर्वार्ध और उत्तरार्ध ऐसे दो भाग हैं। इसमें बाललीला, प्रौढ़लीला और राजलीला का निरुपण हैं।

श्रीमद्भागवत जीव को अवगति में से बचाने में समर्थ है। श्रीमद्भागवत वेदका फल है। और इसके द्वारा साक्षात् भगवद् प्राप्ति होती है।

श्रीमहाप्रभुजी ने श्रीमद्भागवत पर सुन्दर टीका लिखी है। आपने श्रीमद्भागवत का गूढ़ अर्थ सात प्रकार से लिखा है। जिसमें शास्त्र, प्रकरण, स्कंध और अध्याय ये चार प्रकार से अर्थ श्रीभागवतार्थ प्रकरण में बताया है। जबकि श्लोक, पद और अक्षर का अर्थ श्रीसुबोधिनीजी में समझाया है। श्रीमद्भागवत के प्रथम तीन स्कंध, दशम स्कंध और एकादश स्कंध के चार अध्याय तकके ही सुबोधिनीजी में प्राप्त होते हैं। श्रीमद्भागवतजी पर अनेक विद्वानों की टीकाएँ हैं। उनमें श्रीसुबोधिनीजी सबसे उत्तम है। श्रीसुबोधिनीजी पर श्रीगुसांईजी की टीप्पणीजी, और दूसरे गोस्वामी बालकों तथा विद्वानों के टीका ग्रन्थ विद्यमान हैं।

श्रीमहाप्रभुजी ने श्रीमद्भागवत के साररुप 'श्रीपुरुषोत्तम सहस्त्र नाम' प्रकट किया है। यह स्तोत्र श्रीमहाप्रभुजी के हृदय कमल में से प्रकट हुआ

है। इसके पाठ करने से श्रीमद्भागवत के संपूर्ण पाठ का पूर्ण फल प्राप्त होता है। श्रीमद्भागवत का पाठ करने में कई दिन लगजाय, इसलिए प्रतिदिन आधे घंटे में श्रीपुरुषोत्तम सहस्त्रनाम का पाठ अपन सरलता से कर सकते हैं। और फलतो श्रीमद्भागवत के संपूर्ण पाठ का ही अपन को मिलेगा।

श्रीमद्भागवतजी का श्रवण वैष्णवों को अवश्य आग्रहपूर्वक करना चाहिए। श्रीमद्भागवत के श्रवण करने से भगवद् स्वरुप और लीला में प्रेम तथा द्रढ़ता होती है।

२. अष्टाक्षर मंत्र

अपने मार्ग में शरण में आये हुए जीव को दो मंत्र की दीक्षा दी जाती है। जीव जब पहली बार शरण में आता है तब उसे श्रीवल्लभकुल द्वारा श्रीअष्टाक्षर मंत्र की दीक्षा देने में आती है। उसके दाहिने कान में श्रीगुरुदेव तीन बार अष्टाक्षर मंत्र बोलकर, उसके पास से मंत्र का उच्चारण करवाते हैं तथा तुलसी माला देते हैं। इस मंत्र दीक्षा को नाम मंत्र दीक्षा भी कहते हैं। इस मंत्र को लेने से जीव प्रभु की शरण में आता हैं।

जिस प्रकार कुवारी कन्या के विवाह योग्य वर के साथ तय होता है तब लग्न के लिये वचन दिया जाता हैं जिसे 'वाग्दान' कहते हैं। ये वाग्दान होते ही कुँवारी कन्या मन से अपने भावि पति की शरण स्वीकारती है, उसके बारे में विशेष जानकारी रखती है, उसका स्मरण करती है और ऐसे करते करते धीरे धीरे उसमें उसका मन रम जाता है। परंतु जहाँ तक लग्न होता नहीं वहाँ तक पतिगृह जाकर पति की सेवा करने का उसे अधिकार मिलता नहीं हैं।

उसी प्रकार जीवका अष्टाक्षर मंत्र द्वारा प्रभु के साथ वाग्दान होता है। जीव कहता है, 'हे श्रीकृष्ण, आप मेरे शरण है, मैं तुम्हारी शरण में हूँ।' ऐसे जीव को अपने मूल स्वामी पुन:प्राप्त है। उन्हें उनके दासभाव की फिरसे याद कराने में आती है। परंतु अभी यह जीव अपना सर्व समर्पण प्रभु के साथ

किया नहीं। उसे प्रभु के दर्शन करने का, प्रभु की लीला का श्रवण करने का, कीर्तन करने का, और स्मरण करने का तो अधिकार है। लेकिन ब्रह्म सम्बन्ध हुआ नहीं वहाँतक उसे भगवद् सेवा करने का अधिकार मिलता नहीं है। नाममंत्र के द्वारा जीव को नवधा भक्ति में से छःका तो अधिकार प्राप्त होता है, ब्रह्मसंबंध के बाद बाकी की सर्व भक्ति का अधिकार प्राप्त हो जाता है।

श्रीमहाप्रभुजी आज्ञा करते है कि, 'अपनने इस अष्टाक्षर मंत्र का सदा सर्वदा जप करते रहना चाहिए। अष्टाक्षर महामंत्र को श्रद्धा और विशुद्ध बुद्धि पूर्वक जप करने से वह महामंत्र अवश्य फलरुप बनता है। इससे जीव के लौकिक तथा अलौकिक सारे कार्य सिद्ध होते हैं। इसलिए अष्टाक्षर महामंत्र का जप वैष्णवों ने नियमपूर्वक करना चाहिए।' पंचाक्षर मंत्र का जप अपरस के बिना नहीं कर सकते। इसके लिए पूर्णरुप से शुद्धि आवश्यक है। जबकि अष्टाक्षर महामंत्र का जप वैष्णव किसी भी समय, किसी भी जगह, किसी भी स्थिति में, कर सकते हैं। होठ न हिले उस रीति से, मनमें अष्टाक्षर मंत्र का जप करते हुए प्रभु के स्वरुप और लीलाओं का चिंतन करना चाहिए। जिससे मनकी एकाग्रता साध सकते हैं।

३. जयश्रीकृष्ण :

दो वैष्णव आमने सामने मिलते हैं तब आपस में हाथ जोड़कर जय श्रीकृष्ण कहते हैं। कितने ही वैष्णव जै जै श्री गोकुलेश अथवा जय श्रीवल्लभ भी कहते हैं।

अपन जब सामने वाले व्यक्ति को जयश्रीकृष्ण करते हैं तब सामने वाले व्यक्ति के हृदय में बिराजमान अपने स्वामी भगवान श्रीकृष्ण का जय घोष करते हैं, उनका स्मरण करते हैं। प्रभु का नाम कर्ण द्वारा हृदय तक पहुँचते मन के विकार और पाप धुल जाते हैं। अपने प्रभु का स्मरण करते और उनकी जय बोलते अपने हृदय को आनंद होना चाहिए। इसलिए जय श्रीकृष्ण कहने

की रीति मात्र, रूढ़ि या टेव-आदत नही बननी चाहिए। दो हाथ जोड़कर सच्चे हृदय से, प्रेम से, और प्रसन्नता से जयश्रीकृष्ण कहना चाहिए। सामान्य तरीके से अपनको ऐसी आदत डालना चाहिए कि जब घर से निकले अथवा बाहर से घर आयें तब जयश्रीकृष्ण कहें। सुबह उठने पर रात्री को सोते समय भी छोटे बड़े सब को जयश्रीकृष्ण कहे, रास्ते में वैष्णव मिले तब भी जयश्रीकृष्ण कहे। इस तरह सबको प्रेम पूर्वक जयश्रीकृष्ण कहने की आदत डालनी चाहिए।

जयश्रीकृष्ण कहते समय एक बात का विवेक रखने की बहुत आवश्यकता है। दो वैष्णव आपस में मिले तब जयश्रीकृष्ण कहे, यह सब प्रकार ठीक है परन्तु अपन जब श्रीवल्लभकुल के पास जावे तब श्रीवल्लभकुलके बालकोको जयश्रीकृष्ण कहना उचित नहीं है। वे गुरुदेव महाप्रभुजी का स्वरुप है, इसलिए दास तरीके हमको उन्हें दंडवत करना चाहिए। उन्हें जयश्रीकृष्ण न करें। उन्हें जयश्रीकृष्ण कहना यह संप्रदाय की रीति अनुसार वैष्णवों का विवेक नहीं है। इसलिए श्रीवल्लभकुल के बालकों के दर्शन करते, सामने होते हाथ जोड़ना, मस्तक झुकाना, चरण स्पर्श करना और दंडवत करना चाहिए। परंतु उन्हें जयश्रीकृष्ण नहीं कह सकते। इसके बारे में ध्यान रखना चाहिए।

इसी तरह मन्दिर में दर्शन करने गये तब ठाकुरजी के सन्मुख दर्शन करते समय दूसरे वैष्णवों को हाथ जोड़कर जय श्रीकृष्ण नही करें। कारण कि वहाँ अपने सन्मुख साक्षात प्रभु बिराजते हैं, उनके ही दर्शन करके, वंदन करे और दंडवत करे यही उचित है। प्रभु के सन्मुख श्रीवल्लभकुल को भी हाथ जोड़ते नहीं। और दंडवत होते नहीं, तो अन्य वैष्णवों को प्रभु के सन्मुख हाथ जोड़ना और जयश्रीकृष्ण करना यह संप्रदायकी रीति अनुसार योग्य नहीं है, इसलिए इन दो बातो का विवेक रखकर श्रीवल्लभकुल और श्रीठाकुरजी के परोक्ष में वैष्णवों के साथ प्रेम से जयश्रीकृष्ण करने का विवेक रखना चाहिए।

बहुत बार वैष्णवों को ऐसा कहते सुनते हैं कि, 'मुझे अमुक वैष्णव के साथ जयश्रीकृष्ण करने का व्यवहार नहीं है।' यह बात भी ठीक नहीं है। कारण कि वैष्णव के साथ कभी द्वेष या तिरस्कार होता नहीं है। प्रत्येक वैष्णव के हृदय में प्रभु विराजते हैं। प्रभु के साथ न बोलने का व्रत लेना ये अपना दासधर्म नहीं है। इसलिए सारे वैष्णवों की ओर प्रेम भाव रखना चाहिए। और स्नेह पूर्वक भगवद्स्मरण करना चाहिए।

४. मनोरथ

मनोरथ अर्थात् मनरुपी रथ द्वारा करने में आती यात्रा, प्रभुको लाड़-लड़ाने के लिए अपने मन से अनेक प्रकार के सुन्दर आयोजन करना और भगवद्कृपा से उसमें अपने तन-मन और धन का विनियोग कराना, उसे 'मनोरथ' कहने में आता है। मनोरथ का दिन अपने लिए उत्सव का दिन है। 'उत्सव' अर्थात् आनंद, जिसमें से आनंद प्रकट हो वह उत्सव। मनोरथो के द्वारा प्रभु को लाड़ लड़ाने से प्रभु की प्रसन्नता देखकर अपने हृदय में आनंद उत्पन्न होता है। इसलिए पुष्टिमार्ग में मनोरथों और उत्सवों का विशिष्ट स्थान रहता है। 'यथा देहे तथा देवे' इस सिद्धान्त के अनुसार मनोरथो और उत्सवों ऋतु अनुसार मनाने में आते हैं। यथा - फूल मंडली, नाव, जल विहार, इत्यादि मनोरथ उष्णकाल में सुखरुप होते हैं। हिडोंला, दान, सांजी इत्यादि मनोरथ वर्षाऋतु के मनोरथ हैं। व्रतचर्या, विवाहखेल इत्यादि मनोरथ शीतकाल के मनोरथ हैं। इसतरह ऋतु अनुसार विविध समय पर विविध मनोरथो का आयोजन होता है।

अधिक मास में बारह महीनों के सारे उत्सव और मनोरथ प्रभु को अंगीकार कराने में आते हैं। परंतु तब भी ऋतु को ध्यान में रखकर, उस अनुसार वस्त्र, आभूषण, शृंगार इत्यादि धराने में आते हैं।

वर्षोत्सव के मनोरथो के उपरान्त छप्पन भोग और कुनवारा के विशिष्ट मनोरथो का आयोजन भी किया जाता हैं। ये दोनों मनोरथ श्रीवल्लभकुल द्वारा ही प्रभु को अंगीकार करा सकते हैं। वैष्णव अपने घर अथवा श्रीवल्लभ की अनुपस्थिति में मन्दिर में ये मनोरथ अंगीकार करा नही सकते। कुनवारा का मनोरथ श्रीठाकुरजी का श्रीराधिकाजी के साथ सगाई की भावना के मनोरथ का भोजन है। छप्पनभोग मनोरथ श्रीठाकुरजी और श्रीस्वामीनीजी के लग्न के बाद में वृषभानजी ने श्रीठाकुरजी सहीत बारात को दिया गया भोजन की भावना का मनोरथ है। प्रत्येक मनोरथ की भावना जानकर उस अनुसार मनोरथ अंगीकार कराने से अधिक आनंद आता है।

इसमार्ग में, मनोरथ में सामग्री, वस्त्राभूषण, राग आदि अमुक ही निश्चित प्रमाण में होना चाहिए ऐसी कोई मर्यादा नही है। यहाँ साधन महत्व का नहीं है, स्नेह महत्व का है। वैष्णव अपनी अल्प साधन सम्पत्ति जो प्रेम से अंगीकार करता है, तो प्रभु राई जितनी सेवा को मेरु पर्वत के समान मानकर प्रसन्न होते हैं। जहाँ साधन संपत्ति अपार होती है परन्तु स्नेह होता नहीं हैं वहाँ प्रभु कदापि प्रसन्न होते नहीं है।

५. पुष्टिमार्ग के चार पुरुषार्थ

लौकिक की तरह अलौकिक में भी चार पुरुषार्थ है- धर्म, अर्थ, काम, मोक्ष। प्रभु की दास भाव से सेवा करना यह धर्म पुरुषार्थ है। सेवा द्वारा प्रभु की प्राप्ति वह पुष्टिमार्गीय वैष्णवों का अर्थ है। लौकिक व्यवहार में पैसे से सारे कार्य सिद्ध होते है उसी प्रकार अलौकिक व्यवहार में भी प्रभु अपनी सब इच्छाएँ सिद्ध करते हैं। प्रभु अपने हृदय में बिराजते हैं, यही पुष्टिमार्गीय वैष्णवों का काम पुरुषार्थ है। और प्रभु का सेवा स्मरण करते करते ऐसे प्रभुमय बनजाते हैं कि अपना स्वतंत्र अस्तित्व मालुम पड़ता ही नहीं है। वही पुष्टिमार्गीय वैष्णव के लिए मोक्ष है। इस तरह पुष्टिमार्गीय वैष्णव के लिए धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष ये चार पुरुषार्थ प्रभु के लिए ही है।

६. सेवा और पूजा में अन्तर

पुष्टिमार्ग के अलावा अन्य हिन्दू देवालयों में अर्चन की जो विधि और

प्रकार है उसे 'पूजा' कहते हैं। यह कर्ममार्गी प्रकार है। पुष्टिमार्ग में भगवद् सेवा का स्नेह युक्त सेवा का प्रकार है। दोनों प्रकार बिलकुल अलग हैं। उनका अन्तर बराबर समझ लेना चाहिए-

१. वेद इत्यादि शास्त्रों में पूजा के बारे में स्पष्ट नियम है। उस अनुसार ही पूजनेका कार्य होना चाहिए। उसमें विधि का महत्व है, सेवामें विधि का महत्व नहीं है। स्नेह महत्वका है। सेवा का आग्रह है, 'जैसा देह को वैसा देव को।'

२. पूजामार्ग में पुरुषोत्तम के सारे अंशावतारों की अर्चना होती है। सेवामार्ग में पूर्ण पुरुषोत्तम श्री यशोदानंदन की बाल-भावना से सेवा करने में आती है।

३. पूजामार्ग में पूजा का अधिकार सबको है, सेवामार्ग में ब्रह्मसंबंध जिसने लिया हो उसे ही सेवा का अधिकार है।

४. पूजामार्ग में मूर्ति में आहवान मंत्रों द्वारा देवता की प्रतिष्ठा होती है। खंडित मूर्ति की पूजा नहीं हो सकती। सेवा मार्ग में मूर्ति या चित्र श्रीगुरुदेव के पास सेव्य कराते है तो वह स्वरुप बनता है, उसमें साक्षात् प्रभु बिराजते हैं और उनकी सेवा की जाती है।

५. पूजामार्ग में पूजापा आदि वस्तु खरीदने जाते हैं तो पूजा कहाती नहीं। सेवामार्ग में बाजार में प्रभु के लिए शाक-पान लेने के लिए जाते हैं यह भी सेवा है। सारी सेवा समान है। कोई बड़ी नहीं कोई छोटी नहीं।

६. पूजामार्ग में पूजा जाहीर में होती है, सेवामार्ग में सेवा जाहेर में होती नहीं। सेवा एकांकित है। सेवा का रस स्नेह है। इससे सेवा जाहेर प्रदर्शन के लिए नहीं हैं।

७. देवालय सामूहिक पूजा के स्थान हैं, वहाँ भाविक समूह में पूजा अर्चन कर सकते है, समय का कोई नियम क्रम नहीं हैं। सेवा मार्ग में देवालय

का स्थान नहीं है। पुष्टिमार्गीय मंदिर श्रीनंदरायजी का घर है, सार्वजनिक देवालय नहीं है।

८. पूजा सापेक्ष है, सेवा में साधन की अपेक्षा नहीं है। मानसी सेवा सर्व श्रेष्ठ हैं।

९. पूजामें देश, काल, कर्म, द्रव्य इत्यादि पहले शुद्ध होना चाहिए। सेवा में ऐसी आवश्यकता नहीं है।

१०. पूजा का फल लौकिक लाभ, स्वर्ग प्राप्ति की इच्छा या मोक्ष की कामना है। सेवा का फल सेवा ही है, इसके अलावा दूसरे फल की अपेक्षा होती नहीं है।

७. मन्दिर और बैठक जी की भावना :

पुष्टिमार्गीय मन्दिर अन्य हिन्दू मन्दिरों से अलग है, सौराष्ट्र में पुष्टिमार्गीय मन्दिर 'हवेली' के नाम से सुप्रसिद्ध है। पुष्टिमार्गीय मन्दिर का स्थापत्य दूसरे हिन्दू मन्दिरों जैसा शिखरबंद और मंडप मुक्त होता नहीं है। उसका स्थापत्य किसी श्रीमंत अथवा राजा के महालय जैसा होता है। पुष्टिमार्गीय मन्दिर पर (श्रीनाथजी के मन्दिर को छोड़कर) ध्वज और कलश होता नहीं है। कारण कि, पुष्टिमार्गीय मन्दिर श्रीनंदरायजीका घर है। हवेली है। यह व्यक्तिगत मालिकी का स्थान है, वह सार्वजनिक स्थान नहीं है, सार्वजनिक सम्पत्ति नहीं है।

जिस प्रकार 'सारस्वत कल्प में' श्रीनंदरायजी के यहाँ बालक के रुप में प्रभु बिराजते थे। और ब्रजवासी प्रभु की सेवा करने तथा दर्शन करने वहाँ आते थे। उसी प्रकार पुष्टिमार्गीय मन्दिर में श्रीवल्लभकुल के माथे प्रभु बिराजते हैं अपन वैष्णव वहाँ गोपीभाव से दर्शन करने और सेवा करने जाते हैं।

मन्दिर में प्रवेश करते ही सामान्य रुप से बड़ा चौक होता है। वह गोवर्धन चौक कहलाता है। गोवर्धन चौक को पारकर आगे जाते हैं तो सिढ़ीयाँ

आती हैं। वे नवधा भक्तिकी सिढीयां है। सिढियां के उपर की तिवारी ‘जगमोहन’ कहलाती है। वहाँ अन्दर जाने के लिए तीन द्वार होते हैं। सात्विक, राजस और तामस, इस तरह तीन प्रकार के भक्तो के प्रवेश करने के लिए तीन द्वार है। इस द्वार मे सें अन्दर प्रवेश करते बीच में कुंड जैसा चौक होता है, वह श्री यमुनाजी के भाव से होता है। उसके दोनों ओर दो तिवारी होती है। एक डोल तिवारी और दूसरी हिंडोला तिवारी। सामने जो तिवारी होती है वह निज तिवारी कहलाती है। निज तिवारी के बाद प्रभुको बिराजने का निज मन्दिर होता है। निज मन्दिर के दाहिनी ओर शय्या मन्दिर और बायी और भोग मन्दिर होता है। पिछे रसोई घर ईत्यादि होता है। ऐसे पूरे मन्दिर की रचना श्रीनंदरायजी के घर की रचना अनुसार देखने को मिलती है। इसलिए मन्दिर में जाते हैं तब श्रीनंदरायजी के यहाँ जाते हो इस भाव से जाना चाहिए और उस भाव से प्रभु के दर्शन करें।

मन्दिर में संभव हो वह सेवा आग्रह पूर्वक और प्रसन्नता से करना चाहिए। मन्दिर में दूसरों के साथ लौकिक बाते नहीं करना चाहिए। जितना हो सके भगवद् नाम लेना चाहिए।

श्रीमहाप्रभुजी आदि बालको ने जिस जिस स्थान पर बिराजकर श्रीमद्भागवत, वेद रामायण, गीता, इत्यादि का पारायण किया है, उन उन स्थानों संप्रदाय में बेठकजी के नाम से सुप्रसिद्ध हैं। बैठकजी और मन्दिर में एक बड़ा अन्तर है। बैठकजी में वैष्णव को अपरस में स्नान कर सेवा करने का अधिकार है, मन्दिर में वैष्णव को अधिकार नहीं हैं। वैठकजी में अपन श्रीमहाप्रभुजी आदि स्वरुपो की सब प्रकार से सेवा कर सकते हैं। इसलिए जब बैठकजी में जाने का हो तब उस बैठकजी के इतिहास को जानकर, उसका स्मरण करते, वहाँ दर्शन और सेवा करना चाहिए। बैठकजी का स्वरुप, वहाँ सेवा किस तरह करना और बैठकजी का इतिहास इत्यादि के लिए, इसी लेखक का ‘श्रीवैठक चरित्र प्रकाश’ पुस्तक अवश्य पढ़े।

* * *

८. आदर्श वैष्णवी जीवन

दक्षिण भारत के हिन्दू महाराजा विजयनगर (विद्यानगर) के राजा रायकृष्णदास की सभा में श्रीमहाप्रभुजी का कनकाभिषेक हुआ, उसके बाद रायकृष्णदेव उनकी दोनों रानियो के साथ उनकी शरण में आये, और उन्होने विनंती की, ‘महाराज, अब वैष्णव बने हैं, आपके सेवक हुए हैं। हमे हमारा जीवन किस तरह चलाना? इसका उपदेश दें’ तब श्रीमहाप्रभुजी ने उन्हें वैष्णवी जीवन जीने का जो आदर्श राजमार्ग बताया, वे समस्त वल्लभीय वैष्णव समाज के लिए, विशेषकर आज के समय में आचरण करने योग्य हैं।

जब श्री गुरुदेव की कृपा से भाग्यवशात् नाम-निवेदन मंत्र द्वारा प्रभु का शरण प्राप्त हुआ। तब उस जीवको द्रढ विश्वास रखना कि मैं नित्यलीला का आधिदैविक जीव हुँ। फिर से प्रभु की नित्यलीला की प्राप्ति के लिए ही श्रीमहाप्रभुजी के इस मार्ग में मेरा प्रवेश हुआ है और उसके द्वारा ही मेरा उद्धार होगा।

वैष्णवी जीवन के लिए निम्न बातें आवश्यक है :

१. वैष्णव को तुलसीमाला और प्रसादी कंकु का उर्ध्व पुंड्र तिलक अवश्य धारण करना चाहिए। ये दोनों वैष्णव के चिह्न हैं। तुलसीमाला प्रभु के चरणार्विन्द का चिन्ह है। तुलसीजी प्रभुको अति प्रिय है। प्रभु ने कृपा करके तुलसीजी को अपने चरणारविंद में स्थान दिया है। तुलसीजी जब माला स्वरुप अपने हृदय पर बिराजते है तब उनके द्वारा प्रभुका अपने को अहर्निश स्मरण हुआ करता है, इससे अपनी मति और वृत्ति निर्मल रहती है, अपन सतत सचेत रहते है कि ‘मेरे गले में तुलसीजी बिराजते है, इससे मुझे वैष्णवके लिये अच्छा न हो ऐसा कार्य करना नहि चाहिये।’ साथ ही साथ अपने को

द्रढ विश्वास रहता है कि ‘मेरे हृदय पर प्रभुने अपना चरणचिह्न पधराया है, इससे मुझे प्रभुका अभय छत्र प्राप्त हुआ है। वह संभव व असंभव दोनों परिस्थितियों में मेरी रक्षा करेगा, मैं अब निर्भय हूँ, मुझे किसी का डर नही हैं।’

तुलसीजी में औषधीय गुण रहे हुए हैं, हृदयरोग आदि मृत्युदायी रोगों में तुलसीजी अक्सीर है। इस तरह दोनों बातों से तुलसीजी अपने लिए हितकारी है। इसलिए वैष्णवों को तुलसीजी की माला धारण करना चाहिए। तुलसीजी की माला सूत के धागे में पिरोकर धारण की जाती है। नायलोन के धागे में या सोना-चांदी के तार में पिरोई हुई तुलसीजी माला धारण न करें। कारण कि सुत के धागे की माला संभालने में हमें सचेत रखती है। यह माला टूट न जाय, हमेशा इसका ध्यान रखते हैं। इससे यह हमें जाग्रत रखती है। तुलसी की दो माला वैष्णव को एक साथ पहनना चाहिए। भावनात्मक रूप से दो माला युगल स्वरुप के भाव से है, भौतिक रुप से यह कि एक माला टूट जाय तो आपकी गरदन बिना माला की न रहे। यह द्रष्टि भी इसमें है।

श्रीगोकुलेश प्रभु तथा अपने टेकवाले वैष्णवो ने तुलसीमाला और तिलक के लिए जहाँगीर के समय में बहुत परिश्रम लेकर जान को जोखम में डालकर इनकी रक्षा की। आज के समय में अपन देखते हैं कि अन्य दूसरे मार्गवाले अपने गले में काला धागा, रुद्राक्ष की माला या अन्य मालाएँ बिना संकोच के पहनते हैं। वे इस तरह पहनते हैं कि गले से दूसरे देख सके, वे पहनने में गौरव महसूस करते हैं, थोड़ा भी संकोच होता नहीं है। उसी तरह अपन भी वैष्णव हैं तो तुलसी की माला अपने गले में पहनने में थोड़ा भी संकोच या क्षोभ होना नहीं चाहिए, अपने को उसका गौरव होना चाहिए।

वैष्णवोको कपाल पर भगवद् प्रसादी कंकू का उर्ध्वपुंड्र तिलक अवश्य करना चाहिये। तिलक अपने वैष्णवी सौभाग्य का चिह्न है। तुलसी माला की तरह यह भी प्रभुका चरण चिह्न है। अपने मस्तक पर तिलक स्वरुप प्रभु का चरण चिह्न बिराजता है।

सामान्य रुप से अपने मन में अच्छे विचार उत्पन्न होते हैं। इन विचारो का उद्भव स्थान अपने कपाल के मध्य में रहता है। उस स्थान को ‘आज्ञाचक्र’ के नाम से जानते हैं। वहाँ से अपने पूरे शरीर का संचालन होता है। चक्र को अपने नियंत्रण में न रख सकें तो वह खराब विचारो द्वारा अपने जीवन को बरबाद कर सकता है। इस चक्र को नियंत्रण में रखकर उसके द्वारा सद्विचार और सदाचरण करवाने का सरल मार्ग है, उस स्थान पर भगवद् प्रसादी कंकू से प्रभु के चरण चिह्न रुपी तिलक को धारण करने का है। जिस प्रकार प्रभुने कालियनाग का दमन कर उसके मस्तक पर अपने चरणारविंद धारण करते ही कालियनाग यमुनाजी को छोडकर चला गया, और यमुना जल निर्मल हुआ। उसी प्रकार मन तथा बुद्धि को शुद्ध करने के लिए प्रभु के चरण चिह्न रुपी तिलक करने का श्रीमहाप्रभुजी ने बताया है। अपने ललाट पर तिलक होने पर हमें ध्यान रहेगा कि, ‘मै वैष्णव हूँ।’ मैंनें तिलक धारण किया है, इससे मुझसे गलती नहीं होगी। इस तरह, माला और तिलक, अपने मन, वाणी और कर्म को शुद्ध, पवित्र और भगवद्गामी रखना उपयोगी होगा।

साथमें ८४/२५२ वैष्णवों की वार्ता से ऐसा ज्ञान होता है कि बहुत से वैष्णवों ने नौकरी धंधे पर जाते हुए माला-तिलक छुपाये थे, वे प्रसादी जल का ललाट पर तिलक कर, कंकू का तिलक पोछकर नौकरी पर जाते थे, जिससे दूसरों को लगे नहीं कि यह वैष्णव है। उस वैष्णव को सतत लगै कि मेरे ललाट पर जलका तिलक है। तिलक और माला हमारे अहर्निश साथी हैं। इसलिए उनके धारण में हमें किसी प्रकार का संकोच करना नहीं चाहिए। अन्य धर्मवाले अपने धर्म का चिह्न ललाट पर लगाने में संकोच करते नहीं है तो अपन ऐसा मिथ्या संकोच किसलिए करते हैं। ?

अपन प्रभुके दास है, प्रभु अपने स्वामी है, सेवा ये अपना पतिव्रता दासीका धर्म है और सेवा करते अपने ललाट सौभाग्य का चिन्ह रुपी तिलक न हो तो वह अपने लिए उचित लगता नहीं। इसलिए माला तिलक हमेशा

करना चाहिए। वैष्णवी जीवन के लिए आचार्य चरण की पहली आज्ञा है।

(२) वैष्णवी जीवन के लिए माला-तिलक के साथ वैष्णवी पोषाक भी आवश्यक है। सेवा करते घरमें वैष्णवी बंडी और धोती अवश्य धारण करना चाहिए। जैसे लश्कर का अपना गणवेश होता है। कोर्ट में वकीलों का अपना गणवेश होता है उसी प्रकार सेवा के लिए वैष्णवों को अपना वैष्णवी पोषाक अवश्य धारण करना चाहिए।

इस वैष्णवी पोषाक धारण करने से सर्वप्रथम मानसिक रुप से सेवा के लिए हम तैयार हो जाते हैं, अपना मन सेवा के लिए तैयार हो जाता है और सेवामें अपनी सारी वृत्तियाँ सहजता सें लगजाती है। वैष्णवी पोषाक के पीछे अलौकिक भाव रहता है। वैष्णव तरीके से अपन जब सेवा करते हैं, तब पुरुषभाव से सेवा नहीं करते, लेकिन गोपीभाव से सेवा करते है। अपने में गोपीभाव स्फूरे इसके लिए यह पोषाक आवश्यक है। इस पोषाक से गोपीभाव का स्मरण हृदय में सतत रहता है, इससे हृदय में गोपीभाव धारणकर सेवामें प्रवृत होते हैं। वैष्णवों को धोती-बंडी धारण करने का अवश्य आग्रह रखना चाहिए।

यह पोषाक दूसरों को दिखाने के लिए नहीं है, अपने मन की स्फूर्ति के लिए है। लौकिक समाज में जावें तो इसे गुप्त रखना यह भी आवश्यक है।

(३) वैष्णवों को चार जयंति व्रत और एकादशी व्रत अवश्य करना चाहिए। अपने यहाँ रामनवमी, नृसिंहचतुर्दशी, जन्माष्टमी और वामन द्वादशी ये जयन्तियाँ स्वीकारी गई है। प्रभु के सारे अवतारों में प्रभुने चार अवतारों में पुष्टि कार्य किये हैं। इससे चार जयंतिया और चौविस एकादशी का व्रत करना चाहिए। व्रत के लिए 'उपवास' शब्द प्रयोग में लाया जाता है। 'उप' अर्थात् नजदीक, और 'वास' अर्थात् रहना। जिसमें प्रभु के पास रहने में आता है उसका नाम उपवास। इन दिनों में प्रभु की सेवा, स्मरण, कीर्तन, श्रवण होना चाहिए। प्रभु के पास अपनी सारी चित्तवृत्तियाँ रहे, इसके लिए, प्रभु प्रसादी, फलाहार करना चाहिए। भारी फलाहार, मिष्टान्न, न पचे ऐसी वस्तुओं को अधिक प्रमाण में लेने से निद्रा, आलस आना संभव है, इसलिए फलाहार थोड़े प्रमाण में करें।

जैसा आहार वैसा विचार। आहार का असर मन के विचारों पर तुरंत होता है। इसलिए फलाहार हो सके इतना सात्विक, बिना मसाले का केवल शरीर को स्वस्थ स्फूर्तिवान रखे ऐसा करना चाहिए।

इन दिनों में शरीर की पवित्रता अवश्य रखे, इसी के साथ साथ मन की पवित्रता भी रखे। मन की पवित्रता के लिए ब्रह्मचर्य का पालन आग्रह पूर्वक रखें। इन दिनों सत्संग होना चाहिए। लौकिक बाते कम करे। संभव हो तो मौन धारण करें। अधिक जप पाठ करें। इस तरह एकादशी और जयंति व्रत द्वारा शरीर और मनकी पवित्रता व प्रभु के निकट रहने का अधिक प्रयत्न करना चाहिए।

ऐसा करने से स्वस्थता, चित्तकी प्रभु में तत्परता और प्रसन्नता प्राप्त होती है। साथ साथ अपने में आहार, विहार और वाणी पर संयम होता है, इससे शारीरिक तन्दुरस्ती भी रहती है। इस तरह शारीरिक, मानसिक और आध्यात्मिक तीनों बातों पर विचार कर इन व्रतों को वैष्णवों को अवश्य करना चाहिए।

वैष्णवों को सोमवार, गुरुवार के रविवार जेंसे व्रत, एकटाणां करने की आवश्यकता नहीं है, कारण कि ये वार करने से अन्याश्रय होता है। बहुत से ऐसी दलील देते हैं कि, 'हम शारीरिक तन्दुरस्ती के लिए ही ये वार करते हैं।' तो शारीरिक तन्दुरस्ती के लिए वारों के बदले एकादशी करने का आग्रह रखें तो लौकिक एवं पारलौकिक दोनों हेतु सरलतासे सिद्ध हो सकते हैं।

(४) वैष्णवोंको नीति शास्त्रानुसार सत्य बोलना चाहिए, कभी भी प्रामाणिकता नहीं छोडना चाहिए। स्वयं मेहनत करके पसीने की कमाई से यथा लाभ सन्तोष करना चाहिए। देनलेन करकेशेष बचाधन, दूसरो की गरज का लाभ उठाकर अधिक व्याज कमाना, चोरी इत्यादि द्वारा कमाया धन प्रभु अंगीकार करते नहीं हैं। भगवद् सेवा में ऐसे अनीति के द्रव्य का उपयोग नहीं। प्रामाणिक, पसीने की कमाई के द्रव्य से प्रभु प्रसन्न होते हैं। वैष्णव को प्रमाणिक मेहनत की कमाई प्राप्त करने का प्रयास करना चाहिए।

८४/२५२ वैष्णवों की वार्ता से स्पष्ट होता है कि अपनको आजीविका से प्राप्त धन के तीन भाग करना चाहिए। उसमें से एक भाग गुरुदेव और वल्लभकुलकी सेंवा के लिए रखे, दूसरा वैष्णवों की सेवा के लिए और तीसरा भाग ठाकोरजी की सेवा कर अपना और अपने कुटुम्ब का जीवन निर्वाह करना चाहिये। अपना द्रव्य श्रीहरि, गुरु, वैष्णव की सेवा में विवेक पूर्वक वापरना चाहिए।

वैष्णवों दूसरों को कटुवचन नहीं कहेना चाहिए। सबसे मीठा और हितकारी वचन बोले। सब के हृदय में अन्तर्यामी स्वरुप से प्रभु बिराजते हैं। दूसरो को कटु शब्दों से दुःख देने से प्रभु के अपराधी बनते हैं। ऐसा भाव प्राणीमात्र के लिए रखना चाहिए। अपने घरमें रहने वाला प्रत्येक व्यक्ति वैष्णव है, उनके हृदय में प्रभु बिराजते हैं, इस भावसे वैष्णवी व्यवहार करना चाहिए। किसी को दुःख हो, किसी का तिरस्कार हो, किसी से द्वेष हो ऐसे वचन क्रिया करना नहीं चाहिए। साथही विनय से और प्रेम से व्यवहार करना चाहिए।

(५) गरीबो के प्रति दयाभाव रखें। भगवद् सेवा करते करते परोपकार करने जाने की आवश्यकता नहीं, सेवा के उपरान्त समय मिले तो अन्य को मदद करना चाहिए। उनके हृदय में प्रभु बिराजे है इस भाव से उनकी मदद करना चाहिए। अपना फर्ज समझकर ऐसी मदद करें। की हुई मदद को भूलजाना चाहिए। अपने मोह से, अपनी कीर्ति के लिए अपने स्वार्थ के लिए परोपकार करना नहीं चाहिए। सेवा धर्म यह मुख्य धर्म है। परोपकार यह आनुषंगिक धर्म है, इसलिए परोपकार धर्म को प्रमुखता न दीजाय जिससे अपना मुख्य सेवा धर्म छूटे।

(६) भगवद् सेवा के साथ साथ श्रीवल्लभकुल और वैष्णवों की अवश्य सेवा करना चाहिए। दरवाजे आये वैष्णवों का प्रेम से स्वागत करके उनके उपयोगी बनना चाहिए। सबके मदद रुप बने। किसी का बूरा न सोचे न करें। दरवाजे आये वृजवासी इत्यादि को अच्छे शब्दों से सन्मान कर यथा शक्ति सहायता करें। किसी को दुखीत करे ऐसे शब्द न बोले। वैष्णवों की सेवा गुप्त तरीके से करना चाहिए। क्योंकि जिसकी सेवा करें उसे संकोच न हो। श्रीहरिरायजी आज्ञा करते हैं कि, 'सेवा फल के लिए, भोग भोगने के लिए, प्रतिष्ठा के अन्य स्वार्थ के लिए न करें परंतु प्रभु में शुद्ध भाव रखकर, दास धर्म के अनुसार करनी चाहिए।'

जहाँ तक हो सके अपने घर में वर्णाश्रम धर्म का पालन करना चाहिए। वर्णाश्रम धर्म का पालन अपने लिए है, उसके द्वारा अपना सारे समाज के साथ गाढ़ा संपर्क रहता नहीं, समाज से कुछ अलग रहने के कारण अपने मन को समाज की अनेक बातों में भटकाने के बदले प्रभु के मार्ग की ओर जासकता है। इसके लिए वर्णाश्रम धर्म का पालन आज के समय में अपने घरमें अनिवार्य है। इसका अर्थ ऐसा न करें कि अन्य मनुष्यों का अपन अनादर करे, अपमान के तिरस्कार करे।

(७) सारे विद्वानों का आदर सत्कार करना चाहिए, जिसमें संप्रदाय के विद्वानों का विशेष ध्यान रखना चाहिए और उनके पास से जिज्ञासा व श्रद्धा से सम्प्रदाय के सिद्धान्तों को जानने समझने का प्रयत्न करना चाहिए।

(८) जितना संभव हो उतना अपरस का पालन करना चाहिए। 'अपरस' संस्कृत के 'अस्पर्श' से बना है। अस्पर्श अर्थात् किसी को स्पर्श

नहीं करना। विज्ञान के अनुसार प्रत्येक मनुष्य के शरीर में विद्युत प्रवाह बहता है। अपन दूसरों को स्पर्श करते हैं तब उसके शरीर की विद्युत तरंगे, अपने शरीर में सूक्ष्म रुप से प्रवेश करती है और उसका असर अपने मन बुद्धि पर होता है, इससे जब सेवा के लिए प्रवृत्त होते हैं, और जो सेवा में नहीं है, उन्हें स्पर्श करने से उनका मन-बुद्धि का असर अपने पर होना संभव है। इसलिए सेवा के समय में जो सेवा में न हो उनका स्पर्श टालना चाहिए।

इसका अर्थ यह नहीं कि भूल से कोई का स्पर्श हो जाय तो उस पर नाराज हो। अपरस निभाने का फर्ज अपना है, दूसरे का नहीं। अस्पर्श इस तरह निभाये कि जिससे दूसरे को अपने अस्पर्श से तकलीफ, दु:ख या तिरस्कार न हो।

अपरस का प्रकार अपने संप्रदाय के लिए कोई नई बात नहीं है। आज से पचास वर्ष पूर्व अपने हिन्दू समाज में घर घर की आजीवन प्रणालिका थी। जब स्त्री वर्ग शुद्ध तरीके से स्नान करके, रेशमी वस्त्र पहनकर, रसोईघर में रसोई बनाते थे। दूसरे किसी का स्पर्श न हो इसका ध्यान रखते। पुरुषभी बाहर से आकर वस्त्र बदलकर रेशमी शोला (मुकुटा) पहनकर, रसोई घर के बाहर चौक में बैठकर भोजन करते और दूसरों के स्पर्श से बचते। इसी प्रकार अपनी सेवामें प्रचलित है, इसी तरह घर और बाहर सबको इस बात की समझाईश देकर अपरस का पालन समझ से करना चाहिए।

(९) हमेशा नियमपूर्वक वैष्णवों का सत्संग करना और वैष्णवों के साथ बैठकर भगवद् वार्ता करें, प्रभुसे विमुख हो या श्रीमहाप्रभुजी के सिद्धान्तो से अलग बात कहते हो उनका संग न करें।

(१०) प्रभु को समर्पित करके ही भोजन करें, प्रभु के अलावा किसीका आश्रय न करें।

श्रीमहाप्रभुजी ने सारे समय की परिस्थिति को ध्यान में रखकर भगवद् कृपा प्राप्त करने का सरल से सरल तथा तलवार की धार पर चलने जैसा

यह मार्ग बताया है। आप जीव की रगरग पहचानते हैं। जीव के स्वभाव की दुष्टता से वे पूर्ण परिचित हैं, इसलिए आपने स्पष्ट शब्दों में अन्तिम आज्ञा की, 'जब भी आप प्रभु से बहिर्मुख होगे, अन्य का आश्रय करोगे, प्रभु को समर्पण किये बिना अन्न इत्यादि लोगे, अनुपयोगी, असत्य, लौकिक बोलोगे, ऐसे व्यक्ति जिन की लौकिक कामना अधिक हो ऐसो का संग करोगे तो कालरूपी प्रवाह तुम्हारे शरीर और मन को खेच लेगा। तुम्हारा शरीर और मन अभी दैवी है, प्रवाही बन जायगा, तुम आसुरी बन जाओगे। भगवान कृष्ण अलौकिक है, इससे आसुरी, लौकिक बन गये जीव की सेवा अंगीकार करते नहीं, इसलिए अपना यह लोक और परलोक प्रभु द्वारा ही सिद्ध होगा। हमेशा सर्वात्मभाव पूर्वक श्रीगोपीजन वल्लभ की सेवा करें। वे हमें सब प्रकार का फल देंगें। ऐसी श्रद्धा रखें, अपना यही कर्तव्य है। किसी भी स्थिति में इससे विरुद्ध कर्तव्य नहीं है।'

महाप्रभुजी की इन आज्ञाओं के अनुसार आज के समय में अपना दैनिक जीवन जीना होतो कम से कम निम्नानुसार इतना करने का आग्रह अवश्य रखना चाहिए, कुछ मुश्किल हो तो भी इस मार्ग पर चलने का प्रयत्न करना चाहिए-

१. प्रतिदिन प्रा:त उठकर तुलसी माला का दर्शन करके, तुलसी माला आँख पर लगाकर उनके चरण स्पर्श करें।

२. श्रीनाथजी, श्रीयमुनाजी, श्रीमहाप्रभुजी, श्रीगुरुदेव इत्यादि के चित्रजी के दर्शन करके उनका स्मरण करना।

३. छोटे, बड़े सब लोगो से जयश्रीकृष्ण करना चाहिए।

४. प्रतिदिन स्नान करके, धोये हुए वस्त्र पहनकर, चरणामृत लेकर, तिलक कर, मिसरी का भोग धरे। घर के सब कुटुम्बीयोको इस छोटी सेवा में संमिलित करें। श्रीठाकुरजी के चित्रजी सेव्य कराकर, आज्ञा लेकर सेवा करें।

५. अधिक न हो सके वो श्रीठाकुरजी को प्रतिदिन मिसरी की एक कटोरी भोग धराकर नीचे के पाठ करे

(१) मंगलाचरण

(२) यमुनाष्टक

(३) सर्वोत्तम स्तोत्र

(४) चतु:श्लोकी

५. कृष्णाश्रय ओर अष्टाक्षर मंत्र की कमसे कम पाँच माला अवश्य करना चाहिए। इतना करते कमसे कम १५ मिनिट से अधिक प्रा:तकाल में लगेगे नहीं। इतनी सेवा करने के उपरान्त ही दूध, नाश्ता करना चाहिए।

६. अपने प्रतिदिन के खान-पान में प्रसादी मिसरी अथवा चरणामृत पधराकर लेने का नियम करना चाहिए। बाहर जाने का होने पर, बाहर के खान-पान करते समय इस नियम का सरलता से पालन हो सके इसलिए अपने साथ चरणामृत रखना चाहिए, उसे खाने की वस्तु में पधराकर ही ग्रहण करें।

७. संभव हो तो प्रतिदिन या छुट्टी के दिन, कम से कम आठ दिन में एक बार, अपने रास्ते में मन्दिर दर्शन करने जाने का नियम रखना चाहिए।

८. प्रतिदिन रात्री को भगवद्वार्ता करना चाहिए। 'शिक्षापत्र' का एक श्लोक और ८४-२५२ वैष्णवों की वार्ता का एक प्रसंग अवश्य पढ़ना चाहिए। फिर घोल, पद, स्तोत्र पाठ आते हो तो बोलकर सोना चाहिए। इस भगवद् वार्ता में कम से कम १५ मिनिट का समय लगेगा।

९. रात्री को हाथ-पैर धोकर, चरणामृत लेकर, श्रीमहाप्रभुजी, श्रीनाथजी, श्रीयमुनाजी, श्रीगुरुदेव इत्यादि के चित्रों के दर्शन कर, स्मरण करते हुए, सब को जयश्रीकृष्ण करके सोना चाहिए। नींद न आवें वहाँ तक मन में अष्टाक्षर मंत्र का जप करना चाहिए।

इस तरह दिन में आधा घण्टा सेवा सत्संग का नियम बनावें, उस अनुसार चले तो श्रीमहाप्रभुजी की कृपा से इस मार्ग में धीरे धीरे आगे बढ़ सकेगें।

बहुत से ऐसा कहते है कि, 'हमारा बहुत करने का मन है, लेकिन प्रभुकृपा करेगें तब होगा।' यह बात ठीक नहीं। ब्रह्मसंबंध लिया तब से ही प्रभुने अपने पर कृपा की है। दूसरी कृपा के लिए राह देखने की आवश्यकता है क्या? ब्रह्मसंबंध के बाद सेवा स्मरण का अधिकार मिला है। वैष्णवी घरमें अपना जन्म और पालन पोषण हुआ है। परिवार में सब वैष्णव हैं। इस संयोग में वैष्णवी जीवन के लिए कम से कम इतना क्रम न करें, इसमें दोष अपना है, प्रभु की कृपा का नहीं। वैष्णवी वेश आपने स्वीकार किया है, उसके योग्य बनने में कठनाईयां आती है तो बैठ कर सच्चे मन से प्रयत्न करना चाहिए।

श्रीदयाराम भाई ने वैष्णनी जीवन कैसा हो, उसे निम्न पंक्तियों में सुन्दर रुप से समझाया है-

सर्व प्राणी उपर दया, आणवों नही कोईनो दोष,
वश करवी इन्द्रिय सहु यथा लाभ संतोष ।

संतोष धरी वदवी सत्य वाणी,
द्रढ आश्रय प्रभु दीनता आणी

दुष्ट संगथी रहेवु दूर,
वसवुं सदा हरिजननी हजूर

गुणनी उपर गुण करें, ए तो रीत जगतमां प्रकाश,
अवगुण उपर सामोगुण करे, ते मोटा हरिना दास ।

दास दोष सहुना संताड़े,
गुण होय अल्प ते अधिक देखाड़े ।

श्रीमहाप्रभुजी के चरण कमल की शरण और द्रढ आश्रय स्वीकार कर अपन को ऐसे सच्चे वल्लभीय वैष्णव बनना चाहिए।

*